नमोत्थुणं समणस्स भगवओ णायपुत्त महावीरस्स

गल्प-कुसुमाकर

लेखक—

ज्ञातृपुत्र महावीर जैन-संघीय मुनि श्री फकीर-चन्द्रजी महाराजका चरण धूलिकण

"पुप्फ भिक्खु"

[अर्थ सहायक]

दानवीर-राजाबहादुर सेठ ज्वालाप्रसादजी जौहरी

ज्वालाप्रसाद, जगदम्बाप्रसाद

नं० ७१, वडतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता।

प्रकाशक—

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन (गुजराती) संघ

नम्बर २७, पोलोक स्ट्रीट

कलकत्ता।

वीराव्द २४६५ } प्रथम संस्करण १००० { सन् १९३७

विक्रमाव्द १९९४ } { मूल्य ॥=)

प्रज्ञातव्य

—ooःoःoo—

ज्ञातृपुत्र महावीर प्रभु तत्व उपदेशके अतिरिक्त सर्वसाधारणमे भव्य आत्माओंको आत्माभिरमणमे तन्मय करनेके लिये धर्म-कथाओंको भी सुनाया करते थे। उनके उपदिष्ट चार अनुयोगोंमे धर्म-कथाओंके सूत्रोंको प्रथमानुयोग कहा है। जिस प्रथमानुयोगसे साधक आत्म-साधनामे आशासे अधिक वोध और समाधि पाथेय प्राप्त कर सकता है और उस प्रतिवोधसे रत्नत्रयमें पुष्टि पाकर वह मुमुक्षु अपने आत्माको अहिसा, सयम और तपमे स्थिर तथा शुद्ध उपयोग भाव प्राप्त करता है।

परदेशी राजा जैसे क्रूर प्राणीने तो केशी स्वामीके छोटे-मोटे उदाहरणोंको सुन-सुनकर अत्यधिक शिक्षा ग्रहण की थी, यहातक कि वह अपनी हठ और कुटेवें छोडकर आर्य-जैन वन गया था।

महात्मा वुद्ध भी वहुतसे लोकोंमें युक्तिपूर्ण कहानिया सुनाकर जनतामे अहिंसाका खूब प्रचार करते थे, और संसारका त्रिताप मिटानेकी इसी साधनसे भरसक चेष्टा करते थे।

पहले समयके वहुतसे राजा इस प्रकृतिके भी थे कि उन्हें जो कोई नई कहानी सुनाता था उसे वे खूव पुरस्कार देते थे। उस समयके वहुतसे कहानीकार अपनी कहानियोंके वलसे वहुतसे राजाओंको सच्चरित्री तक भी वना देते थे।

आजकल भी इस कहानी युगमें कोई विरल ही देश और समाचार पत्र बचा होगा कि जिसमे कहानीके रूपमे किसी न किसी इप्सित विषयपर कुछ न कुछ प्रकाश न डाला जाता हो। यहातक कि लोक भी अधिकतर सबसे पहले कहानी ही पढ़ते हैं, और कहानीके भावके अनुसार उनका मन भी उधर ही झुक जाता है। वास्तवमे कहानीमे कुछ ऐसा ही जादू है कि—जिससे मनुष्यकी भावना कहींसे कहीं पहुंच जाती है। यदि कहानी नव रसोंसे पूर्ण हो तो मनुष्य रोये या हँसे विना न रहेगा। कहानी-सम्राट् प्रेमचन्दजीकी कहानियोंने तो यह सिद्ध कर दिखाया है कि किसी पतित देश-समाज और जातिको जागृत करके उठाना हो तो उनके सामने जीती-जागती चित्ताकर्षक कहानिया भी साक्षात् रूपमे खड़ी की जायँ।

परन्तु अत्यन्त खेदके साथ लिखना पडता है कि—हमारी व्यापारकला प्रधान जैन समाजमे इस प्रकारकी कहानियोंका प्रचार कहानी-पुस्तकों और समाचार-पत्रों द्वारा बहुत ही कम होता है। इस विषयमे और समाजोंमे तो खूब ही ऊहापोह चल रहा है। मगर अपनी इस सुस्त और प्रसुप्त समाजमे तो इसका कहीं ज़िकर तक भी नहीं किया जाता।

यही कारण है कि—मैंने यह "गल्प-कुसुमाकर" नामक पुस्तक लिखकर इसके द्वारा अपनी समाजमे इस ओर रुचि पैदा करनेकी मानो एक अपील-सी की है और साथ-साथ उन महापुरुषोंका अनुकरण भी करनेकी चेष्टा की है।

इसके अतिरिक्त मुझे यह भी बता देना आवश्यक प्रतीत होता

है कि मैंने कभी इससे पहले कहानीकी कोई पुस्तक नहीं लिखी है। न कभी कोई हिन्दीकी परीक्षा ही दी है। जिसके कारण शायद् उच्च कोटिके हिन्दी लेखकों और पाठकोंको मेरी यह त्रुटिपूर्ण भाषा खटके बिना न रहेगी। परन्तु फिर भी मैंने इन भाषा दोषोंके रहनेपर भी अपने भावोंको न रोककर समाजके नेताओंका लक्ष्य समाजकी अनेक अत्यावश्यक बातोंका अनुभव करानेके लिये इस पुस्तकको लिखा है और इस विषयमे मैंने जो कुछ परिश्रम किया है उसमे मेरे अन्तेवासी शिष्य 'सुमित्त' भिक्षुका अनुरोध भी एक मुख्य कारण है, इन दो निमित्तोंसे भाषा दोषकी कुछ उपेक्षा-सी भी की गई है। इसके अतिरिक्त इनकी बनाई हुई कई कहानिया इस पुस्तकमे सम्मिलित हैं जो कि शिक्षाप्रद और भावपूर्ण तथा सारग्राही हैं। और मैंने कई काल्पनिक कहानिया भी लिखी हैं जिनका आशय मात्र देश, समाज और जातिका उत्थान तथा सुधार ही है। इसमे अनाथी मुनिकी कहानी श्रीराम-चरित उपाध्यायजीकी लिखी हुई है। उक्त महानुभाव हिन्दी-भाषाके विश्वमे एक अद्वितीय उद्भट लेखक हैं, इनकी कहानी अत्युपयोगी और सौत्रिक होनेके नाते आदरका स्थान प्राप्त है और दोनों महोदयोंका साथी लेखकके नाते पूर्ण उपकार मानता हू।

इस प्रकार यह त्रिवेणी संगम इस कहानी युगमे आधुनिक नव-युवक जो कि अपनेको कहानीके रसिक समझते हैं तथा कहानियोंके द्वारा जो आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक शिक्षा लेना चाहते हैं उन्हें यह 'गल्प-कुसुमाकर' सन्मार्ग प्रवृत्ति, सादा चलन, भ्रातृ-भावना,

आजकल भी इस कहानी युगमें कोई विरल ही देश और समाचार पत्र बचा होगा कि जिसमे कहानीके रूपमे किसी न किसी इप्सित विषयपर कुछ न कुछ प्रकाश न डाला जाता हो। यहातक कि लोक भी अधिकतर सबसे पहले कहानी ही पढ़ते हैं, और कहानीके भावके अनुसार उनका मन भी उधर ही झुक जाता है। वास्तवमे कहानीमे कुछ ऐसा ही जादू है कि—जिससे मनुष्यकी भावना कहींसे कहीं पहुंच जाती है। यदि कहानी नव रसोंसे पूर्ण हो तो मनुष्य रोये या हँसे विना न रहेगा। कहानी-सम्राट् प्रेमचन्दजीकी कहानियोंने तो यह सिद्ध कर दिखाया है कि किसी पतित देश-समाज और जातिको जागृत करके उठाना हो तो उनके सामने जीती-जागती चित्ताकर्षक कहानिया भी साक्षात् रूपमें खडी की जायँ।

परन्तु अत्यन्त खेदके साथ लिखना पडता है कि—हमारी व्यापारकला प्रधान जैन समाजमे इस प्रकारकी कहानियोंका प्रचार कहानी-पुस्तकों और समाचार-पत्रों द्वारा बहुत ही कम होता है। इस विपयमे और समाजोंमे तो खूब ही ऊहापोह चल रहा है। मगर अपनी इस सुस्त और प्रसुप्त समाजमे तो इसका कहीं जिकर तक भी नहीं किया जाता।

यही कारण है कि—मैंने यह "गल्प-कुसुमाकर" नामक पुस्तक लिखकर इसके द्वारा अपनी समाजमे इस ओर रुचि पैदा करनेकी मानो एक अपील-सी की है और साथ-साथ उन महापुरुषोंका अनुकरण भी करनेकी चेष्टा की है।

इसके अतिरिक्त मुझे यह भी वता देना आवश्यक प्रतीत होता

है कि मैंने कभी इससे पहले कहानीकी कोई पुस्तक नहीं लिखी है। न कभी कोई हिन्दीकी परीक्षा ही दी है। जिसके कारण शायद उच्च कोटिके हिन्दी लेखकों और पाठकोंको मेरी यह त्रुटिपूर्ण भाषा खटके बिना न रहेगी। परन्तु फिर भी मैंने इन भाषा दोषोंके रहनेपर भी अपने भावोंको न रोककर समाजके नेताओंका लक्ष्य समाजकी अनेक अत्यावश्यक बातोंका अनुभव करानेके लिये इस पुस्तकको लिखा है और इस विषयमे मैंने जो कुछ परिश्रम किया है उसमें मेरे अन्तेवासी शिष्य 'सुमित्त' भिक्षुका अनुरोध भी एक मुख्य कारण है, इन दो निमित्तोंसे भाषा दोषकी कुछ उपेक्षा-सी भी की गई है। इसके अतिरिक्त इनकी बनाई हुई कई कहानिया इस पुस्तकमे सम्मिलित हैं जो कि शिक्षाप्रद और भावपूर्ण तथा सारग्राही हैं। और मैंने कई काल्पनिक कहानिया भी लिखी हैं जिनका आशय मात्र देश, समाज और जातिका उत्थान तथा सुधार ही है। इसमे अनाथी मुनिकी कहानी श्रीराम-चरित उपाध्यायजीकी लिखी हुई है। उक्त महानुभाव हिन्दी-भाषाके विश्वमे एक अद्वितीय उद्भट लेखक हैं, इनकी कहानी अत्युपयोगी और सौत्रिक होनेके नाते आदरका स्थान प्राप्त है और दोनों महोदयोंका साथी लेखकके नाते पूर्ण उपकार मानता हू।

इस प्रकार यह त्रिवेणी संगम इस कहानी युगमें आधुनिक नव-युवक जो कि अपनेको कहानीके रसिक समझते हैं तथा कहानियोंके द्वारा जो आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक शिक्षा लेना चाहते हैं उन्हे यह 'गल्प-कुसुमाकर' सन्मार्ग प्रवृत्ति, सादा चलन, भ्रातृ-भावना,

देश-सेवा, अछूतोद्धार, विद्या प्रचार और साम्यवादकी शिक्षा दिये विना कभी न रहेगा। अतः मुझे यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं है कि इस पुस्तकमे कहानियोंके बहानेसे क्या-क्या उपयोगी अश समझाया है।

यदि हमारे हिन्दी पाठकोंने इससे कुछ भी लाभ उठाया और अपने उज्ज्वल-चरित्रका संगठन और मनोबलका विकास किया तो यह प्रवृत्ति और परिश्रम सफल समझा जायगा और भविष्यमे इसी प्रकारकी कुछ और भी सेवा करनेका प्रयत्न किया जायगा।

प्रार्थी—

ज्ञातृपुत्र महावीर जैन सघका लघुतम सेवक

—'पुप्फ भिक्खु'।

विषयानुक्रमणिका

विषय			पृष्ठ

उपादेय और पाठ्य पुस्तकें

नव पदार्थ ज्ञानसार	।)
आगम शब्द प्रवेशिका	=)
उत्तम प्रकृति	–)
गल्प-कुसुमाकर	॥=)
बारामासा नेम राजुल	=)
बंगाल विहार	अमूल्य
श्रावक व्रत पत्रिका	"
स्वतन्त्रताके चार द्वार	"
महावीर निर्वाण और दिवाली	"
पर्य्यूषण पर्व्व	"
शान्ति प्रकाश	"
महावीर-भगवान्	"
मनुके उपदेश	"

नोट—अमूल्य पुस्तकोंके लिये ॥=) के टिकिट आने चाहिये।

गल्प-कुसुमाकर

क्षमा प्रार्थना

'उसने अपने भाईको बख्श दिया'

[१]

हमारी कहानीका सम्बन्ध पुराने रूपवासकी उस मोडदार गलीसे है, जिसमे अबसे ४० वर्ष पहले ऊधव और माधव नामके दो छींपी भाई रहते थे। ये बड़े परिश्रमशील और कमाऊ थे। मगर ऊधव प्रकृति का क्रूर था, लेकर देना नहीं जानता था, वैर बदला लेनेमे कर्मठ और नृशस था। वह किसीको क्षमा करना नहीं जानता था। नौकरी न देना या कम देना नया नमूना बताकर पुराना या रद्दी माल गाहकके गले मढ देना तो कोई इससे ही सीख ले, 'ससार भरका धन मेरे घरमे आ जाय' यही इसकी इच्छा रहती थी।

माधव प्रकृतिका सरल, हाथ और जबानका सच्चा, मनका साफ और नाड़ेका जितेन्द्रिय था, भाईके आचरणोंपर सदा असंतुष्ट रहा करता था।

वह सदैव उसे समझाता था कि पाप, झूठ, चोरी, ठगी, बेईमानी, कलहसे पैसा पैदा करके दनादन दान पुण्य करने, ब्रह्मभोज, गंगोज, सदाव्रत साधु-भोजन देनेकी अपेक्षा पापको छोड़कर सन्तोषसे श्रमी जीवन बनाये रखना लाख दर्जे अच्छा है। गोलेकी चोरी और सुईका दान मुझे पसन्द नहीं। अत्याचारसे कमाकर दान करना एक प्रकारका बज्रलेप पाप है। इधर गरीबोंके गले काटना और उधर सदाव्रत लगाना अपने भविष्यमे मानो शत्रुका बल बढ़ाने जैसा है। मैं इस पाखण्डसे नाम पैदा करना गुनाह समझता हूं। इसीसे जब आप सन्ध्या करते हैं तब लोग यह आवाज कसते हैं कि तालाबका भगत (बगुला) बैठा है। मेरी मानो तो अनीति और अन्याय छोड़ दो, बनावटी माल देना तथा धोखा देना छोड़ दो, यही परमात्माकी सच्ची साधना है। मैं परमात्माका नाम मुहसे नहीं रटता, मैं तो चरित्रसे शुद्ध रहना पसन्द करता हूं। लालटेनका नाम लेनेसे कभी घरका अन्धकार न भागेगा। बाहरसे शीशी धोकर साफ किया चाहे तो क्या बनता है।

मगर ऊधव पत्थरका बाट था, इसे एक न लगती थी। माधवकी उपदेशपूर्ण शीतल वाणीसे भी आग बबूला हो उठता। खीजकर असभ्यतासे पेश आता। एक दिन बातकी बातमे दोनों भाइयोंमें इसी कारण हाथा-पाई तककी नौबत आ गई। माधवको भारी चोट आई, बड़े भाईसे मार खाकर भी वह आक्रमण न करना चाहता था। जनताको परिचय दे दिया कि ईश्वरको न्यायकारी और दण्ड देने-वाला बतानेवाले मनुष्योंके ये काले कारनामे आपकी आखोंके सामने

हैं। परमात्माको आगे रखकर इस प्रकार अनीति करना कोई इनसे सीख ले। इसीलिये मैं इस ढगसे परमात्माको नहीं मानता। जिसकी पवित्र सृष्टिमे लोग दिन दहाड़े उसीके नामपर डाके डालें और वह सब कुछ जान बूझकर तथा सर्वशक्तिमान् होकर भी कुछ न कहता हो यह कितनी विचारणीय बात है।

ऊधव भडक उठा और बोला कि माधव! जब तू नास्तिक होकर ईश्वरको सबके सामने ईश्वरीय न्यायसे न डरकर उसे कोसता है तब तू मेरा भाई नहीं दुश्मन है। तेरा मुह देखनेसे पाप लगता है। जा अपनी घरवालीको लेकर निकल जा। इस घरमे अब तुझे स्थान न मिलेगा। परमात्मा तुझसे दर-दरकी खाक छनवायेगा और तब तेरी अकल ठिकाने आयेगी। नास्तिक कहीं का।

[२]

माधव राजगढ मडीमे मजदूरी करने लगा है। यह २॥ मन की बोरीको ऊपर फैंककर ढाग चिन देता है। रातको चौकीदारी भी किया करता है। मगर अभी इसके पास इतनी पूजी नहीं हो पाई है कि जिससे यह ठप्पे लाकर श्रमजीविओंमे से नाम कटाकर अपनी रंगसाजीका काम आरभ कर दे। इसीलिये हरदेवी रोज कहती है कि—मुझे भी साथ ले चला करो जिससे दुगने पैसे आने लगें।

माधव—हरदेई! जहातक जीवित हू तुझे यह दासी-कर्म न करने दूगा। मैंने तेरा हाथ गुलामी करानेके लिये नहीं पकडा था। मैं तुझे स्वर्गकी देवी बनाना चाहता हू। जैसे-तैसे इस

साल तो चुप हूं। पर कुछ पासमें होनेपर अगले ही वर्ष ठप्पेलाकर यहीं दुकान खोलूगा और फिर देखना मेरी कैसी दुकान चलती है। मुझसे प्रवीण छींपी यहा कोई नहीं है। एक ही सालके बाद तुझे फिर तो चादीसे लाद दूंगा। यह सब अपने दमपर और कामके बलपर करके दिखला दूंगा। पर ऊधवकी तरह परमात्माका नाम कभी न लूगा। आज-कल बहुतसे उसका नाम जपनेवाले धूर्त, पाखंडी, बगुलाभगत, दीन-पीडक होते हैं, और होते हैं परले सिरेके बेईमान। परन्तु मैं तो चोरी, जारी झूठ, कपट कभी न करूंगा, न किसी दीनको ही सताऊगा। चाहे मेरी खाल ही क्यों न उधड़ जाय। चाहे मैं भूखा ही क्यों न मर जाऊं सुना हरों। हरदेईने मानो सिर हिलाकर उसके प्रस्तावका अनुमोदन कर दिया। माधवका मस्तक गर्वसे ऊचा हो गया। हरदेईको एक वार सन्मानकी तथा स्वाभिमानकी दृष्टिसे देखकर तथा सिर हिलाकर यह कहता हुआ प्याज और जुवारकी रोटी खाने लगा कि जब वे सुखके दिन आये और चले गये तब ये भी न रहेगे।

[३]

माधवसे नगरखेडने कहा कि जरा हाथकी हथेली तो फैलाओ। माधवने ज्योंहीं हथेली फैलाई उसने तुरन्त ५०) रुपये रखकर कहा कि—जा अलवरसे ठप्पे ले आ और अपनी दुकान कर ले माधव।

माधव—और ये रुपये कहासे पाये हैं ? क्या जुआ तो नहीं खेला था।

नगरखेड—सर कट जाय इसकी पर्वाह नहीं। मगर माधव।

कापतेनमें जाकर यह नीच कर्म कभी न करूंगा। अपनी भैंस बेचकर लाया हूं। तेरे जैसे पहलवान पल्लेदारी करें। दोस्त! यह मुझसे न देखा गया। जा आजकी गाड़ीसे चला जा। सामान ले आ। सरदी ऊपरसे आनेवाली है। कुछ गिलेफ बनाने लग जा। मुझे अब दूध नहीं भाता था माधव। इसीसे भैंस बेच-कर दाम खड़े कर लिये। यदि इन रुपयोंके अतिरिक्त मित्रके लिये शरीरकी आवश्यकता पड़े तो उसे भी हँसते-हँसते न्यौछावर कर दूंगा। मुझे निरा मोची ही न समझना कुछ मनुष्यता भी सीखी है। जिस धनसे मित्रोंको और घरके भाइयोंको लाभ न पहुचे और शत्रुओंको डाह न पैदा हो वह धन नहीं, ठीकरी है माधव। जा आज ही। बस और कुछ मत बोल। यह कह नगरखेड़ अपने झोंपड़ेकी ओर चला गया।

[४]

धर्मशालामे व्याख्यान सुनकर माधव हकीमजीवाली गलीसे बाहर हो गया। कुछ देर सोचकर त्रिपोलिया बाजारकी तरफ चला। वहां दरवाजेमे घुसकर शिव मदिरके पास आकर खडा हो गया। ज्योंही नीची दृष्टि की कि एक रेशमी रूमाल किसीकी जेबसे निकल कर गिर पडा। माधवने उसे चट उठा लिया जिसके एक सिरेपर एक गाठ लगी थी। उसने जरा आगे बढकर उनको मुजराकरके उन्हें देने लगा। सर्दार बलवन्तसिंहने रूमाल देखकर अपने काबू कर लिया और माधवको कोतवालीमे ले जाकर खडा कर दिया। इसके बाद थानेदारने यह मामला माल अफसरके यहा पेश कर दिया।

तबेलेसे आई है। तवेला १००-१२५ बीघेका लम्बा-चौडा है। कालसूर इसी कत्लखानेमें ५०० भैंसे रोज मारता है। इसके अतिरिक्त और भी पशु-पक्षियोंकी यहा प्राण-नदी वहा दी जाती है।

उनके मास, चमड़े, खून, हड्डी, आत, सींग, खुर, पाख, चोच आदिके व्यवसायसे बहुत-सा धन कमाता है। पटनेमे इसका बड़ा भारी रेशमका कारखाना भी खुला हुआ है। जहा करोड़ों रेशमी कीड़ोंको मारकर हजारों मन रेशम तैयार किया जाता है तथा देशान्तरोंमे भी रेशम रंगनेवालोंने इससे खूनकी आढत बना रक्खी थी। यह उनकी मागके अनुसार हजारों पीपे खून रेशम रगनेके लिये भेज दिया करता था।

* * * *

चबूतरेपर बैठा-बैठा सौकरिक मन ही मन सोच-विचारमे लगा हुआ है। भविष्यकी जीवन-सामग्रियोंको चुन-चुन कर एक ओर जमा करनेमें व्यस्त है। इतने ही मे जूतोंकी चुर्र मुर्रकी आहट सुनते ही उसकी विचार धारा वहीं रुक गई। उसने पीछेको ओर मुड़कर देखा तो अपने पितारामको खड़ा देखा। उसने तुरन्त उठकर बापका शिष्टाचार किया। आज बापूके शब्दोंमे बिजलीकी तरह भयकर कडक और मादकता थी। उसने गर्वभरे शब्दोंमे कहा कि—

बेटे सौकरिक। तबेले जल्दी जाओ। आज २००० पीपे खून बैल गाडियोंमे लदवाकर गाडीवानोंसे सख्ती लेकर कहो कि पटने जल्द जायं। रेशमके कारखानोंमे खूनकी कई दिनोंसे माग आई

रुपये लगाकर तेरे और तेरी रोहिणीके लिये यह भवन बनवाया था जिसमे तुझे स्वर्गसे अधिक सुख मिलता। परन्तु तू तो भाग्यहीन है। जैन बनने चला है। क्या जैन बनकर इस घरमें भी रहनेका हौंसला रखता है? घरसे निकालते समय पाई तक न दूंगा। लंगौटी लगवा कर सब कपड़े भी उतरवा लूंगा। तब श्रमणोपासक बननेका मजा आयगा, मानजा-मानजा, क्यों जलेपर नमक छिडक रहा है।

*　　*　　*　　*

सौकरिक—प्यारी रोहिणी। क्या तुम मेरे कथनानुसार श्रावक धर्मके १२ व्रत ले आई हो।

रोहिणी नतमस्तक होकर बोली कि—नाथ। इस दासीको आपकी आज्ञा मिलनेपर कब देर थी। सीधी भगवान् महावीरके समवसरणसे श्राविकोचित व्रत ले आई हूं।

सौकरिक—रोहिणी। तू धन्य है। जैन समाजको तुझ-सी आदर्श महिलाकी बड़ी ही आवश्यकता थी जिससे यह निःसन्देह कहता हूं कि मेरे भाग्य आज जागृत हो गये हैं। पर अभी ”

रोहिणी—(बात काट कर) क्या हमारे शुद्ध होनेकी बात पिताजी भी जान गये हैं? मैं उनके स्वभावको जानती हूं। वे अवश्य ही अप्रसन्न हुए होंगे बड़े क्रूर हैं न।

सौकरिक—(हँसकर) वे तो अभी आज्ञा दे गये हैं कि आज ही इस घरसे निकल जाओ। वे समझते हैं कि मेरे मुखपर छोकरेने कालिख पोत दी है। आखिर है तो अभव्य, उल्टे बिचार

ही का न। पर हा, एक बात और याद आती है, वह यह कि इस समय यही चिन्ता है कि साभकी सामायिक कहा बैठकर करेंगे।

रोहिणी—इस तवेलेके पीछे कुछ दूर दक्षिणकी ओर एक ऊंचे टीलेवाली जो जमीन दीख पड़ती है उसपर प्रधान अभयकुमार एक 'अभयाश्रम' वनवानेवाले हैं। वहीं हम भी अपनी एक झोंपडी बाधकर उसमे रहा करेंगे। यह तो आप जानते ही हैं कि अव हम लकडिया वेचकर ही अपना निर्वाह किया करेंगे।

सौकरिक—और मुनियोंको आहार दान क्योंकर दे सकेंगे ? मात्र एक लगोटी रखकर सव भूषण भी तो लौटा देने होंगे।

रोहिणी—प्राण प्यारे! चिन्ताकी कौन-सी बात है। मैं अभी-अभी सुनकर आई हू कि भगवान्का सच्चा साधु तो रूखा-सूखा आहार लेता है। वही मुनियोंको भी पडगाह कर देंगे। उनकी नवधा भक्ति करेंगे। उनके लिये हलवे माडेकी जरूरत नहीं है। उन्हींकी तरह हम भी अपना सादा जीवन वनायेंगे। परन्तु उस अभव्यात्माकी फूटी कौड़ी भी न छूयेंगे।

सौकरिक—और तुझे फिर कभी गहने वनवानेकी इच्छा तो न होगी ?

रोहिणी—आज मैंने तीन रत्न मुद्राएं और १२ अमूल्य गहने जव पहन लिये हैं, तव मैं आजसे सर्वथा सन्तुष्ट हो गई हूं। अवसे इस एक जैन महिलाके सत्य और शील ही गहने रहेंगे। चादी-सोनेकी वेड़िया नहीं।

*   *   *   *

मंत्री अभयकुमारका "अभयाश्रम" बनकर तैयार हो गया है। इसमें सौकरिकको जैन मिश्नरीका पद दिया गया है। इसके प्रभावशाली व्याख्यान कसाई पाड़ेमे नित्य होते हैं। जैन सिद्धान्त पर खूब चर्चा रहती है। इसके मनोहर और आकर्षक प्रवचनोंसे सब कसाई लोगोंके विचार बदल गये हैं। कत्लखाने गोशालाके रूपमें हो गये है। इन सबको भगवान्का श्रावक बनाया गया है। सौकरिककी जातिके सब लोग व्यापारी बन गये है। कुछ श्रमजीवी होनेके लिये तैयार हैं, पर कसाईका काम किसीको स्वप्नमे भी इष्ट नहीं। मात्र एक कालसूरको ही वहा कसाई कहा जाता हैं। बाकीके लोग तो साम्यवाद विधायक जैनत्वको पा चुके है।

प्रातः सायं इस आश्रममें २०-२५ हजार आदमियोंकी भारी भीड़ लगती है। उस समय शान्तिका साम्राज्य छाया रहता है। सब लोग मौन होकर सामायिकमे स्थित हो जाते है। उस समय इनकी दृष्टिया नासिकाके अग्रभागपर जम जाती हैं, कायोत्सर्गमें धर्मध्यानका चिन्तवन किया जाता है। इन सबकी सामायिक निर्दोष होती है। अब ये सब अणुव्रती जैन हैं। जो सौकरिककी दयालु प्रकृतिसे शुद्ध किये गये हैं। उस समयका यह व्यक्तिगत जैन वननेका मार्ग खुला हुआ था, जातिगत नही। उस समय जातिका कोई मूल्य न था। जेमनवारके अन्दर सबको सम्मिलित किया जाता था रोटी-बेटी व्यवहारसे किसी नवीन जैनको पुराने जैन वञ्चित नहीं रखते थे। क्योंकि उस समय धर्म काल था, सम-

दर्शित्व जीवन था। सौकरिकके अथक परिश्रमका फल भी यही निकला। इसीने कसाई जातिमे सुधार किया। २५॥ देशके जैनोंमे इसका नाम बड़े चाव और आदरसे लिया जाता।

मगर यह तो अब भी लकड़िया बेचकर सादगीसे अपना उदर पालन करता है। इसीमे इसे पूर्ण सन्तोष है। इसके त्यागमे बड़ी ही मौलिकता है। प्रधान स्वयं इसकी सब प्रकारसे रक्षा-सेवा करना चाहता है। परन्तु वह परावलम्बी होना पाप समझता है। महामात्य आश्रममे आकर इसीके पास नित्य सामायिक करता है। इससे धर्म गोष्ठी करके ही अपनेको धन्य मानता है। इसीकी एक शाखा 'उदासीन' आश्रम है, जिसमे वयोवृद्ध पुरुषोंकी सेवा होती है। मगध और अगके ३०० योजनके वर्गी-करण क्षेत्रमे इस प्रकारकी छोटी-मोटी हजारों संस्थाएँ और उनकी उपशाखाएँ बनाई गईं। बेऔलादवाले अपना इन्हीं सस्थाओंमे सर्वस्व दान करते थे। जैन गृहस्थ अपनी कमाईका चौथा भाग इन्हीं सस्थाओंको देते थे। उस समयकी जनताको सब प्रकारकी सहायता दी जाती थी। जिससे ससारमे बेरोजगारीको उस समय कोई भी नहीं जानता था। सौकरिक नित्य प्रति इन हजारों वृद्ध पुरुषोंकी सेवामे तन्मय रहकर सबको मानव धर्मका पाठ पढाता रहता था।

इधर रोहिणीका अनाथ बालिकाओं और वृद्धाओंकी सेवा करनेमे ही सब समय व्यतीत होता है। इसने अपनी जातिकी हजारों बहनें सुचारु रूपसे शुद्ध कराई हैं। वे भी सब परिपक्व

श्राविकाएँ हैं, शीलवती है, अंग शास्त्रोंकी स्वाध्याय करती हैं। देशके हितका ध्यान रखती हैं। जहा देशको अगुली जैसी छोटी वस्तुकी आवश्यकता होती है वहा ये अपने तन-धनको भी न्योंछावर करनेके लिये सदैव तैयार रहती हैं। धर्म और देश-सेवाके लिये ही अपना जीवन समझती हैं। इस प्रकार यह चौथे आरेका अभयाश्रम अनेक देश-देशान्तरोंमें अद्वितीय गिना जाने लगा था।

*　　　*　　　*

आज कालसूरका १७ वा है, उसके मरनेकी घटनाको सुनकर रोमाच हो उठते हैं। क्या एक मच्छीका काटा होता है, बस वही हलकमे उलझ गया था। तबसे बिचारा सूखकर काटा हो गया था। वर्षों बाद तड़पनसे एक दिन उसकी बिल्कुल जान निकल गई, अब उसके क़त्लखानेमें हड़ताल पड़ गई है। १७ वें दिन कुटुम्बके ५१ आदमी मिलकर अभयाश्रममे आये। ६-७ घटे तक वाद-विवाद करते-करते धरनासा माड बैठे। सौकरिकसे बलपूर्वक कहते हैं कि बापकी जगहपर बिन्दी मत लगाओ। वर्ना आज मगधमेंसे कसाई कर्म उठ गया समझो। परन्तु पति-पत्नीका जोडा सुमेरुकी तरह अचल था।

एक प्रमुख—सौकरिक। बापका व्यवसाय करनेमें क्या डर है ?

सौकरिक—मुझे वीर परमात्माकी दयासे कभी भय नहीं लग सकता मात्र एक पाप कर्मका भय रखता हूं। जिसका विपाक सबको झख मारकर भी भुगतना पड़ता है। उसका उदय आते समय कोई भी मित्र उसका भाग नहीं वंटा सकता।

प्रमुख—हम यहा सब मिलकर जितने मनुष्य आये हैं पापके उतने ही हिस्से कर लेंगे। लो बस अब तो चलो। इससे बढ़कर और क्या दिलासा दिया जा सकता है। बस चलो देर मत करो।

सौकरिक—भद्रे रोहिणी। जरा दुकान तक चलना होगा।

रोहिणी—पधारिये पतिदेव।

*　　　*　　　*

आज दुकानके चबूतरे और सडकपर भारी भीड जमी खडी है। जो भी सुनता है भागा चला आता है। यह खबर विजलीकी तरह राजगृह भरमे फैल गई है। सबको सुनकर यही अचरज होता है कि—क्या आज वह सौकरिक नहीं है जिसने अब तक हजारों हत्यारोंकी कई पीढियोंका पाप धोया है। मगर न मालूम आज यह अपने वापकी दुकानपर क्या करने आया है।

आज सौकरिकने २८ वर्षके वाद अपने वापकी दुकानमे पैर रक्खा है। आल्मारीसे पैनी छुरी निकालकर जनताके देखते-देखते अपनी कोमल जाघमें एक जोरका हाथ मारा कि छुरी ४ इञ्च जघामे थी तिसपर वह था एकदम मूर्छित।

रोहिणीने सहसा गुलाव जल छिडककर स्वामीकी मूर्च्छा दूर की।

सौकरिक होशमे आकर वोला कि वन्धुओ। इसमे भारी दर्द हो रहा है जिसे मैं ही जानता हू, कितना असह्य है। रुलाई आने-वाली है। अत शीघ्र ही इस दु.खके ५१ भाग वनाकर सब वाट

लो और एक भाग मेरे पास रहने दो जिससे मुझे आरोग्य लाभ हो।

सब कसाई – भाई। दुःखके बटानेकी किसीमें शक्ति नहीं। इसके हिस्से नहीं बनाये जा सकते। इसे तो वही भोगता है जिसके दमोंपर आन बनती है। हम सब इस समय बेवस हैं।

सौकरिक—ऐ मेरे बाल मित्रों। जब इस साधारणसे दुःखके बटानेमे तुम सब असमर्थ हो तब पाप और उसके दु'ख फलके भाग क्योंकर ले सकोगे। अतः अब भी समझो, सचेत होकर पापके बिलसे निकलो। मुझे तुम्हारी अज्ञान दशापर बड़ी दया आती है। अत. चलो, भगवान् ज्ञातृपुत्र-महावीर स्वामीकी शरणमे चलो जिससे तुम्हारे दोनों लोक सुधर सकते हैं।

यह सब देख-सुनकर दर्शकगण अवाक रह गये। सब मन्त्रवत कीलितसे थे, और बार-बार उनके मुखसे यही निकलता था कि दयालु श्रमणोपासक सौकरिककी जय! णायपुत्त भगवान वीर परमात्माकी जय।

* * *

पूर्णक सेठ अपने नौमहलेसे जनमेदिनीमे इस दृश्यको दूरसे देखकर चकित हो गया। मन ही मन उसकी बडाई करने लगा, और विचार आया कि जिस कत्लखानेको राजसत्ता द्वारा भी नहीं रोका जा सकता था उसी पापके अड्डेको महावीरके जैन मिशनमे भर्ती होकर उस कसाईके पुत्रने किस प्रकार रोक दिया। कितनी वजनदार युक्ति है जो अनपढ और जड मानवोंके मनको भी हिंसासे

रोक दिया। अहिंसाका पाठ पढाकर अन्तस्तलपर किस गजबकी छाप डाली है। जिसने इसकी आत्मामे ऐसे उच्च कोटिके भाव भरे हैं वह कोई आदर्श महात्मा है। ईश्वरका नवीन अवतार ऐसी ही आत्मा होती है। इतनेमें 'मज्जक' सेवकने आकर कहा कि—देव। आज ज्ञातपुत्र महावीरके श्रमणोपासकोंका वोलवाला है। जैन समाजकी सख्या त्रैवर्णिकोंके अतिरिक्त अछूतोंमे बड़े जोरोंसे बढती आ रही है। अव तक वड़े-बड़े राजपुत्र ही इस धर्ममे दीक्षित होते थे। परन्तु अव तो छोटी जातिके लोक भी आदर्श मनुष्य बनते जा रहे हैं। आज मैं भी सौकरिकके आदर्श जीवनपर मस्त होकर उसीसे पाच अणुव्रत रूप दीक्षा लेकर अभी वहींसे आ रहा हू। जैन धर्म सबके लिये धर्मद्वार खोल रहा है। सवको सहयोगी वनाता है। अभेद रूपसे सवको अपनाता है। यह प्राणीमात्रका हित-चिन्तक है।

पूर्णक सेठ—मज्जक। इस समय ज्ञातृपुत्र महावीर भगवान किस स्थानपर विराजमान होंगे ?

मज्जक—मालिक। इस समय गुणशीलक उद्यानमे एक भूतके मन्दिरके सामने एक विशालकाय दृढ़ आसनपर वैठे हैं और सुन्दर स्याद्वाद्व शैलीका उपदेश करते हैं। मेरा भाई पज्जायक अभी-अभी उनसे जाल वुननेका व्यापार छोड़कर आया है। ये देखो जालके टुकडोंका पुलिन्दा मेरे पास मौजूद है। जो उसीने मुझे विश्वास दिलानेके लिये भिजवाया है। यह उसके त्यागका आदर्श परिचय कितना मौलिक है।

पूर्णक सेठ—वे वहा भूतालयके सामने क्यों ठहरे हैं ?

मज्जक—अज्ज ! वे वहा इसलिये ठहरते है कि—"बहुसख्यक लोगोंकी यह मान्यता है कि हम यक्षकी पूजा-अर्चना करते हैं, और वह हमे धन, जन, पुत्र, स्त्री आदिका सुख देता है, सब अनुकूलताएं उसीके अधीन हैं। समृद्धिका मिलना उसीकी आसीस और पूजाका फल है। इस प्रकारके उल्टे विचारोंमें लोग अनादि कालसे भूलते-भटकते आ रहे हैं। इसी कारण भगवानने उसी यक्षालयके सामने अपनी अशोक छायामे सबको अविरल शाति और विश्राम दिया है, और यक्षके जड पूजक पक्षपातियोंपर शिक्षामृतकी वर्षाका आरम्भ कर दिया है। इसीसे मगधके करोड़ों मनुष्योंके विचारमे परिवर्तन आ गया है। उन्हे अब यह प्रतीत होने लगा है कि हम अपने ही कर्मानुसार सुखी और दुखी होते हैं। यक्ष विचारा क्या किसीके भाग्यमे घुस निकलेगा कभी नहीं। इसीसे अब वहा ईन मीन साढ़े तीन पुजारी रह गये है। जहा मनुष्योंका गमन-आगमन अधिक होता है प्रभु वहा ही ठहरते हैं। आजकलकी गन्दी गलियोंके उपाश्रयोंकी तरह उनके लिये बन्द मकानकी आवश्यकता न थी। भगवान् वहा इसलिये भी ठहरते हैं कि किसी तरह लोगोंको मानव धर्मकी शिक्षा मिले, और उनके द्वारा मिले असख्य प्राणियोंको अभयका दान। अत सेठजी। आप भी वहा जाकर उनका दर्शन लाभ लेकर पवित्र उपदेश सुननेके भाग्यशाली वनें।

* * * *

पूर्णक गुणशीलक उद्यानको देखकर रथसे नीचे उतर गया है।

(१) उसने प्रभुकी सेवामे उपस्थित होनेकी जल्दीमे अपना जड़ाऊ नीलमणि जूता वहीं उतार कर अलग रख दिया, तथा यह विचार आया कि यदि नंगे पैरों जरा मैं भी चलकर देखू तो पता लगे कि अनेक दीनोंको नगे पैरों चलनेसे कितना कष्ट मिलता है, और कुछ सहिष्णुता भी आयेगी। अनेक प्राणी कुचलकर प्राणान्त होनेसे बच रहेगे। यह प्रभुके दर्शनका मुझे पहला लाभ मिलेगा।

(२) सवारी इसलिये छोड रहा हू कि वडप्पनका घमण्ड न रहे। क्योंकि मुझे तो जिज्ञासु बनकर इनसे आत्म-मार्गकी सीख लेनी है। अत. वहा यह मान न रहे कि मैं अरव-खरबपति सेठ हू। न कुछ मैं जन-समाजको अपना भारी-भरखमपन दिखाने ही आया हू। मेरे वैभवकी अपेक्षा उनका त्याग सबसे ऊंचा है। अतः मेरा महत्व इसीमे है कि मिट्टीमें बीजकी तरह खाकसे उदय पानेके लिये प्रभुके वताये मार्गका अनुसरण करनेमे ही मेरा परम कल्याण है।

(३) पान, सुपारी, फूलमाला और फूलोंके गजरे भी उतार फेंके, और उसे रह-रहकर यही विचार आने लगा कि मुझे अव यहा आकर इन्द्रिय विपय लोलुप भी न वनना चाहिये। विलासितासे आत्माका वहुत कुछ पतन हो चुका है। अव तो महान् आत्माके दर्शनसे सादगी, सभ्यता, सहानुभूतिके साथ-साथ सन्तोप पाना चाहिये। इसीसे इस साधकने आकर्पक और मोहक वस्तुए उतार कर अलग कर दी हैं। क्योकि चरित्र-शील होते समय ये वस्तुए न तो स्मृति पथमे ही आयगी और न आत्म-रमणताके समयमे वाधक ही वनेंगी।

पूर्णक सेठ— वे वहा भूतालयके सामने क्यों ठहरे हैं ?

मज्जक—अज्ज ! वे वहा इसलिये ठहरते है कि—"बहुसंख्यक लोगोंकी यह मान्यता है कि हम यक्षकी पूजा-अर्चना करते हैं, और वह हमे धन, जन, पुत्र, स्त्री आदिका सुख देता है, सब अनुकूलताएं उसीके अधीन हैं। समृद्धिका मिलना उसीकी आसीस और पूजाका फल है। इस प्रकारके उल्टे विचारोंमें लोग अनादि कालसे भूलते-भटकते आ रहे हैं। इसी कारण भगवानने उसी यक्षालयके सामने अपनी अशोक छायामे सबको अविरल शाति और विश्राम दिया है, और यक्षके जड़ पूजक पक्षपातियोंपर शिक्षामृतकी वर्षाका आरम्भ कर दिया है। इसीसे मगधके करोडों मनुष्योंके विचारमे परिवर्तन आ गया है। उन्हे अब यह प्रतीत होने लगा है कि हम अपने ही कर्मानुसार सुखी और दुखी होते हैं। यक्ष विचारा क्या किसीके भाग्यमे घुस निकलेगा कभी नहीं। इसीसे अब वहा ईन मीन साढ़े तीन पुजारी रह गये है। जहा मनुष्योंका गमन-आगमन अधिक होता है प्रभु वहा ही ठहरते हैं। आजकलकी गन्दी गलियोंके उपाश्रयोंकी तरह उनके लिये बन्द मकानकी आवश्यकता न थी। भगवान् वहा इसलिये भी ठहरते हैं कि किसी तरह लोगोंको मानव धर्मकी शिक्षा मिले, और उनके द्वारा मिले असख्य प्राणियोंको अभयका दान। अत. सेठजी ! आप भी वहा जाकर उनका दर्शन लाभ लेकर पवित्र उपदेश सुननेके भाग्यशाली बनें।

* * * *

पूर्णक गुणशीलक उद्यानको देखकर रथसे नीचे उतर गया है।

(१) उसने प्रभुकी सेवामे उपस्थित होनेकी जल्दीमे अपना जडाऊ नीलमणि जूता वहीं उतार कर अलग रख दिया, तथा यह विचार आया कि यदि नगे पैरो जरा मैं भी चलकर देखू तो पता लगे कि अनेक दीनोंको नगे पैरों चलनेसे कितना कष्ट मिलता है, और कुछ सहिष्णुता भी आयेगी। अनेक प्राणी कुचलकर प्राणान्त होनेसे बच रहेगे। यह प्रभुके दर्शनका मुझे पहला लाभ मिलेगा।

(२) सवारी इसलिये छोड रहा हूं कि वडप्पनका घमण्ड न रहे। क्योंकि मुझे तो जिज्ञासु वनकर इनसे आत्म-मार्गकी सीख लेनी है। अत· वहा यह मान न रहे कि मैं अरव-खरवपति सेठ हूं। न कुछ मैं जन-समाजको अपना भारी-भरखमपन दिखाने ही आया हूं। मेरे वैभवकी अपेक्षा उनका त्याग सवसे ऊंचा है। अत मेरा महत्व इसीमे है कि मिट्टीमें वीजकी तरह खाकसे उदय पानेके लिये प्रभुके वताये मार्गका अनुसरण करनेमे ही मेरा परम कल्याण है।

(३) पान, सुपारी, फूलमाला और फूलोंके गजरे भी उतार फेंके, और उसे रह-रहकर यही विचार आने लगा कि मुझे अव यहा आकर इन्द्रिय विपय लोलुप भी न वनना चाहिये। विलासितासे आत्माका वहुत कुछ पतन हो चुका है। अव तो महान् आत्माके दर्शनसे सादगी, सभ्यता, सहानुभूतिके साथ-साथ सन्तोष पाना चाहिये। इसीसे इस साधकने आकर्पक और मोहक वस्तुएं उतार कर अलग कर दी हैं। क्योंकि चरित्र-शील होते समय ये वस्तुए न तो स्मृति पथमे ही आयगी और न आत्म-रमणताके समयमे वाधक ही वनेंगी।

(४) प्रभुके सभा-मंडपमें जब सिंह-बकरी भी एक घाट पानी पीते हैं। कोई किसीका शत्रु नहीं रहता, इसीसे वीतरागताके अनुकरण करनेकी प्रबल उत्कठा जागृत हो जाती है। नृशस और श्वपद जीव तक भी आपसका जातीय द्वेष यहा आकर दूर देते हैं। उन पशुओंने भी हिंस्रभाव छोड़ दिया है। निर्बलपर घातकताका द्वेषभाव भुलाकर साम्यभाव पैदा कर दिया है। यह सब इस सिद्ध पुरुषका ही प्रबल प्रभाव और माहात्म्य है। तब मनुष्योंको तो उच्च कोटिका प्रेम पाठ सीखना चाहिये। यही भाव लेकर पूर्णकने भी अपना कटार खोलकर चार घटेवाले रथमें फेंक दिया। इसी तरह जेबसे चाकू और हाथका फैंसी बेंत भी उसी जगह रख दिये।

(५) यदि ग्राहक मेरे पास कोई क्रय वस्तु खरीदने आता है तब मैं उसे ऊची कक्षाकी बहुमूल्य वस्तु दिखाता हू, न कि घटिया, तब इसी भाति मैं भी भगवान् महावीर प्रभुसे धर्म सुनने जा रहा हूं। तब क्या वे भी मुझे उच्च कोटिका धर्म न कह बतायेंगे ? और मुझे भी कुछ उसपर मनन करने और दृढ़ विश्वासके लिये तैयार होकर जाना चाहिये। यदि अभीसे अभ्यास करूंगा तो चरित्रका पार ले सकूँगा। यही विचार कर बोलनेमे वायु द्वारा होनेवाने हिसा दोषको रोकनेके लिये मुखपर एक वस्त्रका पर्दा कर लिया, और विनयके साथ नतमस्तक होकर पाचों अग झुका दिये, तथा हर्ष और उत्साहसे भरपूर होकर वीतरागकी सेवामे उपस्थित हो गया।

* * * *

प्रभुके दरबारमे उस समय मनुष्योंके अतिरिक्त पशु और

पक्षीगण भी आशासे अधिक सख्यामे उपस्थित होते थे। जिसमें गाय बकरी, सिंह, चीता, खरगोश, स्याहगोश, कुत्ता, बिल्ली, भालू, बन्दर, व्याघ्र, हस, मोर, साप, चील, चिडिया आदि अनेक प्राणियोंसे दरबारका एक भाग खचाखच भरा हुआ था। तीन घण्टे तक साम्यवाद और स्याद्वादपर व्याख्यान हुआ। धर्म, प्रेम, जीवनका उदय, ईश्वर, कर्म, सृष्टि आदि सब ही विषयोंकी व्याख्या की गई। इसके अनन्तर सर्वप्रथम वन-जन्तुओंने अनुक्रमसे इस प्रकार त्याग और प्रतिज्ञा लेना आरम्भ किया।

बकरी—प्रभो। मैं दातोंसे छानकर पानी पिया करूगी, और पक्षके अन्तिम दिन सूखा घास खाया करूगी। पर उस दिनके लिये घास सुखाकर खानेका विचार तक न करूंगी।

कई पक्षीगण—भगवन्। हम सब रात्रिभोजनका त्याग करते हैं, इसके अतिरिक्त रातका विचरना भी आजसे छोडते हैं।

गाय—परमात्मन्। मैं सूखा घास फूस खाकर मनुष्यको दूध दिया करूगी। और मर जानेपर चमड़ा, हड्डी, सींग आदि और अपने होश-हवास दुरुस्त रहते हुए कभी स्नान भी न करूगी।

बकरी – नाथ। हम सब मिलकर प्रेम प्यारसे बैठा करेंगे। कभी लडाई न करेंगे, और मनुष्यकी भलाईके लिये अपनी आतें तक देनेमे इन्कार न होगा। चाहे कोई हमे मारकर ही क्यों न खा जाय पर हम किसीसे प्रतिहिंसा और कृतघ्नता न करेंगी।

सिंह और वृक—विभो। जहा तक आप विराजमान हैं वहा तक हम किसीको न मारेंगे।

गाय—तब क्या इतने दिन उपवास ही करते रहोगे ? अच्छा मैं अपना दूध पिला दिया करूंगी। पर मास भक्षण न करना, इसकी तो हडताल बराबर जारी रखना।

सिंह—जगदम्बे। यह भी तो खूनसे ही बनता है। अतः उसे भी न पीऊंगा। इसके अतिरिक्त भूखसे मर जाना अच्छा है परन्तु अपने बछड़े भाइयोंका हक छीनना महापातक है। गरीब-की हाय बुरी होती है और वह सिंह जैसोंके लिये भी असह्य है।

सर्प—जगदुद्धारक। हमने पहले जन्ममे क्रोध अधिक किया था। सबमे कलह अधिक लम्बा बढाया था, जिससे हमको लम्बकाय विषकी रस्सी-सी बनकर छातीके बल चलनेका प्राकृतिक दण्ड मिला है। तथापि हमसे हर किसीको भय न लग पावे, अतः संवत्सरीसे वीर जयन्ती तक हम लोग पृथ्वीमे ही छुप रहा करेंगे।

बिच्छू—दयालु पुरुष। सर्दियोंमे मैं भी बाहर न निकलूगा।

कुत्ता - वर्धमान। मुझसे भय खाकर जो जमीनपर बैठ जायगा, उसे कभी न काटूगा। किसीका नमक खाकर उसे हराम भी न करूंगा।

भगवान्—अरे। कोई आदर्श त्याग भी करो। जिससे इस विश्वको तुमसे कोई शिक्षाका पाठ मिले। ये तो मामूली त्याग हैं। कोई यावज्जीवके लिये महात्याग कर दिखाओ। मेरे विचारमे आपको सब प्रकारसे समदर्शी बन जाना चाहिये। जिससे तुम्हारा इस अज्ञान योनिसे उद्धार हो।

सव पशु पक्षी एक स्वरमे—अन्तर्यामी सर्वज्ञ। हमे यह भी स्वीकार है, अवसे हम सव मिलकर छूत-छातके मसलेको उड़ाकर एक तरफ वालाये ताक रखते है। हम सव एक ही तालावमें पानी पीयेंगे। एक नदी, एक कुयेमे ही सव पानी पिया करेंगे। आजसे जाति मदको निवाप-अजलि देते हैं। वस यह हमारी पूर्ण समदर्शिता है।

आज प्रभुकी सभामे पाशवके आदर्श त्यागसे मानव समाजकी छाती हिल उठी, सवकी गर्दन नीचे झुक गई। मनही मन विचारने लगे कि—आजका पशुवर्ग अपनी हैसियतसे अधिक त्याग दिखा रहा है। यदि हम इनसे कुछ शिक्षा लेकर अधिक त्याग न करें तो मनुष्यके रूपमे पशु जैसे या उससे भी वदतर हैं।

पूर्णक इनके इस आदर्श त्यागपर एकदम गद्गद हो गया। वीर परमात्माके उपदेशसे उसे आज मानो अपना ही अनन्त आत्म-धन मिल गया। सभा विसर्जन हो गई। पूर्णक १२ व्रतोसे सुसस्कृत होकर अपनेको धन्य मानता हुआ अपने घर आया। आते ही इसने अपने साथ-साथ जीवनका एक पहलू बदल दिया। जिसके सामने इन्द्र, अहमिन्द्र नरेन्द्रके सुखी जीवन भी कुछ न थे।

* * * *

आज बिम्वसार-मगधेश १४ हजार मुनिराजोंको दण्डवत् करते-करते थक गया, सास फूल गयी, कलेजा धीरे-धीरे हिलने लगा। परन्तु फिर भी साहस-पूर्वक ज्ञात-नन्दन-महावीर देवसे यह निवेदन किया कि—

हे देवज्ञ। मैंने अपनी युवावस्थामें अनेक लड़ाइयें लड़ीं अब तक यही हाल है, इस बुढ़ापेमे भी बड़े-बड़े जवान मुझसे लोहा नहीं ले सकते। किसी भी श्रमजनक कार्यसे आजतक कभी थकान न चढ़ी, पर मेरे अन्तर्यामिन। यह मैं सच कहता हूं कि आज तो मुनिवन्दन करने-करते थक गया। क्या उठ-बैठ करनेकी वन्दना पर इसीसे कस बलसे निकल गये। आजसे मै यह मान्यता स्वीकार करता हू कि मनुष्य धर्म करते समय थकनेका बहाना बना लेता है, किन्तु पाप करते कभी नहीं थकता।

भगवान्—श्रेणिक। जब तू धर्मसे अपरिचित था तब एक दिन किसी वनमे एक हिरणीपर वाण चलाया था, और वाण इतने जोरसे लगा कि उसके पेटसे पार होकर किसी वृक्षमे जा चुभा। यह देख तूने उछल-उछलकर अपने इस आखेट कर्मकी प्रशसा की थी। जिससे तेरे भावोंमे इतनी पाप कालिमा आ जमी कि तेरी आत्मामे सातवीं नरक जैसे दल वन्ध गये थे, और वे आज वन्दना करते समय शुभ भाव आनेपर एकदम नष्ट हो गये है। आज ही तूने सच्ची वीरता दिखाई है। आज आत्माने अपने बल-वीर्य-पुरुषार्थ और पराक्रमकी सच्ची स्फुरणा की है। जिससे थकान मालूम होती है, आज तू पापके दगलमे वहिरग भावको मात दे चुका है। आज छः नरक जितने पाप कट गये हैं, अव तो मात्र एक नरक जितने ही रह गये है, यह तेरी हार तुझको मुबारिक होगी, और आज तूने सच्ची जय पाई है, चिन्ताकी बात नहीं है ... क।

श्रेणिक—अनन्त-ज्ञान-दर्शिन्। क्या आपका अन्तेवासी श्रावक रहकर अव भी नरकमे जाऊंगा। यदि आज्ञा दें तो इस वार फिर वन्दना करूं जिससे इस एक नरकके पापसे भी पिंड छूटें या कोई और उपाय वताएँ जिससे मेरी वह भयकर काली नरके कुण्डिका भी टूटे।

भगवान्—श्रेणिक। अव उस नमूनेके भाव तो न आयेंगे। परन्तु यदि तू पूनियाकी एक समायिक भी मोल ले सके तो इस भयानक नरकके गर्त्तसे शायद वच भी जाय।

* * * *

मगधके 'रात्रिक' बाजारमे एक घासकी झोंपड़ी है, जो कि पुरालके फूससे छाई गई है, अगाडी एक बडासा चबूतरा है, जो मिट्टी-गोमयसे मानों अभी लीपा पोता है, इसमे दाहिने कमरेमे रूई और पूनीका ढेर व्यवस्थित है, उसके अन्दर शायद रसोई घर है, जिसमे मात्र एक मिट्टीका तवा और एक मिट्टीकी परात रक्खी है। वड़ेपर भी एक मिट्टीकी ही लुटिया रक्खी है। पीली मिट्टीकी सफाईसे पुता हुआ आगन सोनेको हस रहा है, इस झोपडी मे सफाई इतनी है कि वह राजमहलको भी नसीव नहीं हो सकती श्रेणिक राजा यहीं आकर एक हलकी-सी आवाज़मे कहता है—पूनिया। भाई पूनिया। ज़रा वाहर तो पधारिये। तुमसे कुछ आवश्यक काम है। परन्तु भीतरसे कोई उत्तर न मिला। परन्तु तुरन्त ही एक पडोसीने हाथ जोडकर कहा कि—सरकार। क्या काम है वह अन्दर है, इस समय सामायिक कर रहा है। इसमे

पहर दिन चढ़े तक हिलना भी नहीं है बोलना तो दरकिनार रहा यह उस समय तक आख उठाकर भी न देखेगा। अतः आज्ञा कीजिये। आपका सन्देश एक बजे तक अवश्य पहुचा दूंगा।

श्रेणिक—भाई ! हमें तो इससे एक सामायिक मोल लेना था ! जिसकी अब ही बात-चीत हो जाती तो ठीक था।

प्रातिवेश्मिक—(स्वगत) हंस कर और कुछ सोचकर (प्रगट) हे राजन्! आपकी बात सुनकर प्रत्येक मनुष्यको आश्चर्य हो सकता है। कारण प्रथम तो सामायिक जैसी आन्तर वस्तु कोई ऐसा वैसा खिलौना नहीं है, जो बाजार गये और खरीद लाये। दूसरे सामायिक कोई छोटे-मोटे मूल्यकी वस्तु नहीं जो १००) २००) रुपया ले-देकर जेबके हवाले कर दी जा सके। तीसरे मुझे यह भी आशा नहीं पड़ती कि पूनिया अपनी सामायिक बेचनेपर राजी हो जाय।

श्रेणिकराज—क्या कहा, राजी न होगा। नगदनारायण वह वस्तु है जिसे देखकर देवताओंके मुँहसे भी लार टपक पड़ती है जिसमे इस बनियेंकी तो क्या असल है। इसके अतिरिक्त इसकी इच्छा हो तो लागतसे दुगुने-चौगुने सौगुने-हजार गुने तक दाम ले ले। उधारका काम नहीं, हम सब नकद चुका देंगे। चाहे तो अभी कोपसे जाकर चेक भुना लावे। श्रेणिक वह राजा नहीं है जिसके पीछे वर्षों तक तगादेवाले गलियोंकी खाक छाना करें और उसकी कल ही पूरी न हो।

प्रातिवेश्मिक—राजन् ! अपराध क्षमा हो, पर शायद आप मेरे

अभिप्रायको समझे नहीं, अतः मैं सारी घटना अथसे अंतकत सुनाता हूं। वास्तवमे बात यह है कि अबसे १२ वर्ष पहले यह पूनिया सेठ पूर्णकके नामसे प्रसिद्ध था। एक दिन यह वीर प्रभुके पास पहली ही बार गया था, पहले-पहल उपदेश सुनकर इसने श्रावकके १२ व्रत स्वीकार कर लिये। उस समय यह अरब-खरब धनका स्वामी और इभ्य सेठ था। एक दिन अपने कुटुम्बको एकत्र करके यह कहा कि—जिसको जितना दाय भाग पहुंचता है वह उस दायादका सौ गुणा ले ले। यह कह उसने सबको इसी रीतिसे उनका हक दे दिया। सबको आशासे अधिक भाग बाट दिया। तथा सबको अलग-अलग कर दिया। वे सब अब भी करोडोंपर गद्दी विछाये वैठे हैं, सबकी सुख चैनसे कटती है।

बटवारेसे बच रहे धनसे राजगृहके पूर्व द्वारपर एक अनेकान्त-वाद विद्यालय खोला। जिसमे हजारों विद्यार्थियोंकी पाठ्य व्यवस्था की गई है। जिसका ध्रुव कोप कई करोड़ है।

पश्चिममे नगर द्वारसे कुछ दूर भिपगालय स्थापन किया है। जहा लाखों मनुष्य और पशु चिकित्सा द्वारा आरोग्य लाभ पाते हैं।

और उत्तरके नगर द्वारकी ओर इसने 'अनाथ-रक्षक-गृह' वनवाया। जिसमें मनुष्य और पशुओंको आरामसे रक्खा जाता है। अनाथोंके लिये खाने-पीने पढने तककी उत्तम व्यवस्था है। वहा अनाथोका सुखसे भरण-पोपण होता है।

तथा दक्षिणकी ओर 'उदासीनाश्रम' भी है जिसमे पक्की उमरके

स्त्री-पुरुष अलग-अलग रक्खे जाते हैं। वहापर वे अपने बुढापेके जीवनको धर्म और सुख शान्तिसे बिताते हैं। जितनी सेवा उनकी घरपर सन्तान नहीं करती होगी उतनी वहापर होती है। नगरके मध्य भागके चौक बाजारमे इसका एक महाकाय आर्हत पुस्तकालय है। जहा जनताको आगम-शास्त्र स्वाध्याय करनेका अवसर संसार भरकी भाषाओंमे मिलता है, और व्यावहारिक शिक्षाके लिये भी लाखों पुस्तकें है।

यहींपर ग्रामीण बन्धुओंके सुभीतेके लिये हजारों चलते-फिरते पुस्तकालयोंका भी सुन्दर प्रबन्ध किया गया है। इसकी सब संस्थाओंका ट्रस्टी महामात्य अभयराजकुमार है।

इसपर भी एक दिन इसने विवेकसे काम लेकर विचारा कि मगध, अग, बंग और कलिंगमे मैंने किसीका कोई ऋणी नहीं छोड़ा है। सबको अनृण किया, दान भी किया, जनताके लाभार्थ संस्थाएं भी बना दीं, तब भी बहुत-सा धन बच गया है। इसका निवेड़ा ही नहीं आता। यह लक्ष्मी फिर भी बन्दरीके बच्चेकी तरह चिपटी ही रहती है, मेरा पीछा ही नहीं छोडती। उसने एक दिन सिर्फ सात सिक्के रखकर बचा-खुचा सब धन कूड़े-करकटकी तरह बाजारमे फेंक दिया, और फूसकी झोपडी बाधकर तबसे यह यहा ही रहता है। सात सिक्के ही इसकी निजी पूँजी है। इससे अधिक यह फूटी कौड़ी भी लेनेको तैयार नहीं है। रूई और पूनियोंका व्यवसाय करके अपना उदर निर्वाह करता है। पगडी, धोती, चादर, छोड़कर इसकी कोई पोशाक नहीं

तबेलेसे आई है। तबेला १००-१२५ बीघेका लम्बा-चौडा है। कालसूर इसी कत्लखानेमें ५०० भैंसे रोज मारता है। इसके अतिरिक्त और भी पशु-पक्षियोंकी यहा प्राण-नदी बहा दी जाती है।

उनके मास, चमड़े, खून, हड्डी, आत, सींग, खुर, पाख, चोच आदिके व्यवसायसे बहुत-सा धन कमाता है। पटनेमे इसका बड़ा भारी रेशमका कारखाना भी खुला हुआ है। जहा करोड़ों रेशमी कीड़ोंको मारकर हजारों मन रेशम तैयार किया जाता है तथा देशान्तरोंमे भी रेशम रंगनेवालोंने इससे खूनकी आढत बना रक्खी थी। यह उनकी मागके अनुसार हजारों पीपे खून रेशम रगनेके लिये भेज दिया करता था।

* * * *

चबूतरेपर बैठा-बैठा सौकरिक मन ही मन सोच-विचारमे लगा हुआ है। भविष्यकी जीवन-सामग्रियोंको चुन-चुन कर एक ओर जमा करनेमें व्यस्त है। इतने ही मे जूतोंकी चुर्र मुर्रकी आहट सुनते ही उसकी विचार धारा वहीं रुक गई। उसने पीछेको ओर मुड़कर देखा तो अपने पितारामको खड़ा देखा। उसने तुरन्त उठकर बापका शिष्टाचार किया। आज बापूके शब्दोंमे बिजलीकी तरह भयकर कडक और मादकता थी। उसने गर्वभरे शब्दोंमे कहा कि—

बेटे सौकरिक। तबेले जल्दी जाओ। आज २००० पीपे खून बैल गाडियोंमे लदवाकर गाडीवानोंसे सख्ती लेकर कहो कि पटने जल्द जायं। रेशमके कारखानोंमे खूनकी कई दिनोंसे माग आई

रुपये लगाकर तेरे और तेरी रोहिणीके लिये यह भवन बनवाया था जिसमे तुझे स्वर्गसे अधिक सुख मिलता। परन्तु तू तो भाग्यहीन है। जैन बनने चला है। क्या जैन बनकर इस घरमें भी रहनेका हौंसला रखता है ? घरसे निकालते समय पाई तक न दूंगा। लंगौटी लगवा कर सब कपड़े भी उतरवा लूंगा। तब श्रमणोपासक बननेका मजा आयगा, मानजा-मानजा, क्यों जलेपर नमक छिडक रहा है।

* * * *

सौकरिक—प्यारी रोहिणी। क्या तुम मेरे कथनानुसार श्रावक धर्मके १२ व्रत ले आई हो।

रोहिणी नतमस्तक होकर बोली कि—नाथ। इस दासीको आपकी आज्ञा मिलनेपर कब देर थी। सीधी भगवान् महावीरके समवसरणसे श्राविकोचित व्रत ले आई हूं।

सौकरिक—रोहिणी। तू धन्य है। जैन समाजको तुझ-सी आदर्श महिलाकी बड़ी ही आवश्यकता थी जिससे यह निःसन्देह कहता हूं कि मेरे भाग्य आज जागृत हो गये हैं। पर अभी "

रोहिणी—(बात काट कर) क्या हमारे शुद्ध होनेकी बात पिताजी भी जान गये हैं ? मैं उनके स्वभावको जानती हूं। वे अवश्य ही अप्रसन्न हुए होंगे बड़े क्रूर हैं न।

सौकरिक—(हँसकर) वे तो अभी आज्ञा दे गये हैं कि आज ही इस घरसे निकल जाओ। वे समझते हैं कि मेरे मुखपर छोकरेने कालिख पोत दी है। आखिर है तो अभव्य, उल्टे विचार

ही का न। पर हा, एक बात और याद आती है, वह यह कि इस समय यही चिन्ता है कि साझकी सामायिक कहा बैठकर करेंगे।

रोहिणी—इस तवेलेके पीछे कुछ दूर दक्षिणकी ओर एक ऊंचे टीलेवाली जो जमीन दीख पड़ती है उसपर प्रधान अभयकुमार एक 'अभयाश्रम' वनवानेवाले हैं। वहीं हम भी अपनी एक झोंपडी वाधकर उसमे रहा करेंगे। यह तो आप जानते ही हैं कि अव हम लकडिया वेचकर ही अपना निर्वाह किया करेंगे।

सौकरिक—और मुनियोंको आहार दान क्योंकर दे सकेंगे? मात्र एक लगोटी रखकर सव भूषण भी तो लौटा देने होंगे।

रोहिणी—प्राण प्यारे। चिन्ताकी कौन-सी वात है। मैं अभी-अभी सुनकर आई हू कि भगवान्का सच्चा साधु तो रूखा-सूखा आहार लेता है। वही मुनियोंको भी पडगाह कर देंगे। उनकी नवधा भक्ति करेंगे। उनके लिये हलवे माडेकी जरूरत नहीं है। उन्हींकी तरह हम भी अपना सादा जीवन वनायेंगे। परन्तु उस अभव्यात्माकी फूटी कौड़ी भी न छूयेंगे।

सौकरिक—और तुझे फिर कभी गहने वनवानेकी इच्छा तो न होगी?

रोहिणी—आज मैंने तीन रत्न मुद्राएं और १२ अमूल्य गहने जव पहन लिये हैं, तव मैं आजसे सर्वथा सन्तुष्ट हो गई हूं। अवसे इस एक जैन महिलाके सत्य और शील ही गहने रहेंगे। चादी-सोनेकी वेड़िया नहीं।

* * * *

मंत्री अभयकुमारका "अभयाश्रम" बनकर तैयार हो गया है। इसमें सौकरिकको जैन मिश्नरीका पद दिया गया है। इसके प्रभावशाली व्याख्यान कसाई पाड़ेमे नित्य होते हैं। जैन सिद्धान्त पर खूब चर्चा रहती है। इसके मनोहर और आकर्षक प्रवचनोंसे सब कसाई लोगोंके विचार बदल गये हैं। कत्लखाने गोशालाके रूपमें हो गये है। इन सबको भगवान्का श्रावक बनाया गया है। सौकरिककी जातिके सब लोग व्यापारी बन गये है। कुछ श्रमजीवी होनेके लिये तैयार हैं, पर कसाईका काम किसीको स्वप्नमे भी इष्ट नहीं। मात्र एक कालसूरको ही वहा कसाई कहा जाता हैं। बाकीके लोग तो साम्यवाद विधायक जैनत्वको पा चुके है।

प्रातः सायं इस आश्रममें २०-२५ हजार आदमियोंकी भारी भीड़ लगती है। उस समय शान्तिका साम्राज्य छाया रहता है। सब लोग मौन होकर सामायिकमे स्थित हो जाते है। उस समय इनकी दृष्टिया नासिकाके अग्रभागपर जम जाती हैं, कायोत्सर्गमें धर्मध्यानका चिन्तवन किया जाता है। इन सबकी सामायिक निर्दोष होती है। अब ये सब अणुव्रती जैन हैं। जो सौकरिककी दयालु प्रकृतिसे शुद्ध किये गये हैं। उस समयका यह व्यक्तिगत जैन बननेका मार्ग खुला हुआ था, जातिगत नही। उस समय जातिका कोई मूल्य न था। जेमनवारके अन्दर सबको सम्मिलित किया जाता था रोटी-बेटी व्यवहारसे किसी नवीन जैनको पुराने जैन वञ्चित नहीं रखते थे। क्योंकि उस समय धर्म काल था, सम-

दर्शित्व जीवन था। सौकरिकके अथक परिश्रमका फल भी यही निकला। इसीने कसाई जातिमे सुधार किया। २८॥ देशके जैनोंमे इसका नाम बड़े चाव और आदरसे लिया जाता।

मगर यह तो अब भी लकड़िया वेचकर सादगीसे अपना उदर पालन करता है। इसीमे इसे पूर्ण सन्तोष है। इसके त्यागमे बड़ी ही मौलिकता है। प्रधान स्वयं इसकी सब प्रकारसे रक्षा-सेवा करना चाहता है। परन्तु वह परावलम्बी होना पाप समझता है। महामात्य आश्रममे आकर इसीके पास नित्य सामायिक करता है। इससे धर्म गोष्ठी करके ही अपनेको धन्य मानता है। इसीकी एक शाखा 'उदासीन' आश्रम है, जिसमे वयोवृद्ध पुरुषोंकी सेवा होती है। मगध और अगके ३०० योजनके वर्गीकरण क्षेत्रमे इस प्रकारकी छोटी-मोटी हजारों संस्थाएँ और उनकी उपशाखाएँ वनाई गईं। वेऔलादवाले अपना इन्हीं सस्थाओंमे सर्वस्व दान करते थे। जैन गृहस्थ अपनी कमाईका चौथा भाग इन्हीं सस्थाओंको देते थे। उस समयकी जनताको सब प्रकारकी सहायता दी जाती थी। जिससे ससारमे वेरोजगारीको उस समय कोई भी नहीं जानता था। सौकरिक नित्य प्रति इन हजारों वृद्ध पुरुषोंकी सेवामे तन्मय रहकर सवको मानव धर्मका पाठ पढ़ाता रहता था।

इधर रोहिणीका अनाथ वालिकाओं और वृद्धाओंकी सेवा करनेमे ही सव समय व्यतीत होता है। इसने अपनी जातिकी हजारों वहनें सुचारु रूपसे शुद्ध कराई हैं। वे भी सव परिपक्व

श्राविकाएँ हैं, शीलवती है, अंग शास्त्रोंकी स्वाध्याय करती हैं। देशके हितका ध्यान रखती हैं। जहा देशको अगुली जैसी छोटी वस्तुकी आवश्यकता होती है वहा ये अपने तन-धनको भी न्योंछा-वर करनेके लिये सदैव तैयार रहती हैं। धर्म और देश-सेवाके लिये ही अपना जीवन समझती हैं। इस प्रकार यह चौथे आरेका अभयाश्रम अनेक देश-देशान्तरोंमें अद्वितीय गिना जाने लगा था।

*　　　*　　　*

आज कालसूरका १७ वा है, उसके मरनेकी घटनाको सुनकर रोमाच हो उठते हैं। क्या एक मच्छीका काटा होता है, बस वही हलकमे उलझ गया था। तबसे बिचारा सूखकर काटा हो गया था। वर्षों बाद तड़पनसे एक दिन उसकी बिल्कुल जान निकल गई, अब उसके क़त्लख़ानेमें हड़ताल पड़ गई है। १७ वें दिन कुटुम्बके ५१ आदमी मिलकर अभयाश्रममे आये। ६-७ घटे तक वाद-विवाद करते-करते धरनासा माड बैठे। सौकरिकसे बल-पूर्वक कहते हैं कि बापकी जगहपर बिन्दी मत लगाओ। वर्ना आज मगधमेंसे कसाई कर्म उठ गया समझो। परन्तु पति-पत्नीका जोडा सुमेरुकी तरह अचल था।

एक प्रमुख—सौकरिक। बापका व्यवसाय करनेमें क्या डर है ?

सौकरिक—मुझे वीर परमात्माकी दयासे कभी भय नहीं लग सकता मात्र एक पाप कर्मका भय रखता हूं। जिसका विपाक सबको झख मारकर भी भुगतना पड़ता है। उसका उदय आते समय कोई भी मित्र उसका भाग नहीं बंटा सकता।

प्रमुख—हम यहा सब मिलकर जितने मनुष्य आये हैं पापके उतने ही हिस्से कर लेंगे। लो बस अब तो चलो। इससे बढ़कर और क्या दिलासा दिया जा सकता है। बस चलो देर मत करो।

सौकरिक—भद्रे रोहिणी! जरा दुकान तक चलना होगा।

रोहिणी—पधारिये पतिदेव!

* * *

आज दुकानके चबूतरे और सडकपर भारी भीड जमी खडी है। जो भी सुनता है भागा चला आता है। यह खबर विजलीकी तरह राजगृह भरमे फैल गई है। सबको सुनकर यही अचरज होता है कि—क्या आज वह सौकरिक नहीं है जिसने अब तक हजारों हत्यारोंकी कई पीढियोंका पाप धोया है। मगर न मालूम आज यह अपने वापकी दुकानपर क्या करने आया है।

आज सौकरिकने २८ वर्षके वाद अपने वापकी दुकानमे पैर रक्खा है। आल्मारीसे पैनी छुरी निकालकर जनताके देखते-देखते अपनी कोमल जाघमें एक जोरका हाथ मारा कि छुरी ४ इञ्च जघामे थी तिसपर वह था एकदम मूर्छित।

रोहिणीने सहसा गुलाव जल छिडककर स्वामीकी मूर्च्छा दूर की।

सौकरिक होशमे आकर वोला कि वन्धुओ! इसमे भारी दर्द हो रहा है जिसे मैं ही जानता हू, कितना असह्य है। रुलाई आनेवाली है। अत शीघ्र ही इस दु.खके ५१ भाग वनाकर सब वाट

लो और एक भाग मेरे पास रहने दो जिससे मुझे आरोग्य लाभ हो।

सब कसाई — भाई। दुःखके बटानेकी किसीमें शक्ति नहीं। इसके हिस्से नहीं बनाये जा सकते। इसे तो वही भोगता है जिसके दमोंपर आन बनती है। हम सब इस समय बेवस हैं।

सौकरिक—ऐ मेरे बाल मित्रों। जब इस साधारणसे दुःखके बटानेमे तुम सब असमर्थ हो तब पाप और उसके दु:ख फलके भाग क्योंकर ले सकोगे। अतः अब भी समझो, सचेत होकर पापके बिलसे निकलो। मुझे तुम्हारी अज्ञान दशापर बड़ी दया आती है। अत. चलो, भगवान् ज्ञातृपुत्र-महावीर स्वामीकी शरणमे चलो जिससे तुम्हारे दोनों लोक सुधर सकते हैं।

यह सब देख-सुनकर दर्शकगण अवाक रह गये। सब मन्त्रवत् कीलितसे थे, और बार-बार उनके मुखसे यही निकलता था कि दयालु श्रमणोपासक सौकरिककी जय! णायपुत्त भगवान वीर परमात्माकी जय।

* * *

पूर्णक सेठ अपने नौमहलेसे जनमेदिनीमे इस दृश्यको दूरसे देखकर चकित हो गया। मन ही मन उसकी बडाई करने लगा, और विचार आया कि जिस कत्लखानेको राजसत्ता द्वारा भी नहीं रोका जा सकता था उसी पापके अड्डे को महावीरके जैन मिशनमे भर्ती होकर उस कसाईके पुत्रने किस प्रकार रोक दिया। कितनी वजनदार युक्ति है जो अनपढ और जड मानवोंके मनको भी हिंसासे

रोक दिया। अहिंसाका पाठ पढाकर अन्तस्तलपर किस गजबकी छाप डाली है। जिसने इसकी आत्मामे ऐसे उच्च कोटिके भाव भरे हैं वह कोई आदर्श महात्मा है। ईश्वरका नवीन अवतार ऐसी ही आत्मा होती है। इतनेमें 'मज्जक' सेवकने आकर कहा कि—देव। आज ज्ञातपुत्र महावीरके श्रमणोपासकोंका बोलबाला है। जैन समाजकी सख्या त्रैवर्णिकोंके अतिरिक्त अछूतोंमे बड़े जोरोंसे बढती आ रही है। अब तक बड़े-बड़े राजपुत्र ही इस धर्ममे दीक्षित होते थे। परन्तु अब तो छोटी जातिके लोक भी आदर्श मनुष्य बनते जा रहे हैं। आज मैं भी सौकरिकके आदर्श जीवनपर मस्त होकर उसीसे पाच अणुव्रत रूप दीक्षा लेकर अभी वहींसे आ रहा हू। जैन धर्म सबके लिये धर्मद्वार खोल रहा है। सबको सहयोगी बनाता है। अभेद रूपसे सबको अपनाता है। यह प्राणीमात्रका हित-चिन्तक है।

पूर्णक सेठ—मज्जक। इस समय ज्ञातृपुत्र महावीर भगवान किस स्थानपर विराजमान होंगे ?

मज्जक—मालिक। इस समय गुणशीलक उद्यानमे एक भूतके मन्दिरके सामने एक विशालकाय दृढ़ आसनपर बैठे है और सुन्दर स्याद्वाद्व शैलीका उपदेश करते हैं। मेरा भाई पज्जायक अभी-अभी उनसे जाल बुननेका व्यापार छोड़कर आया है। ये देखो जालके टुकडोंका पुलिन्दा मेरं पास मौजूद है। जो उसीने मुझे विश्वास दिलानेके लिये भिजवाया है। यह उसके त्यागका आदर्श परिचय कितना मौलिक है।

पूर्णक सेठ—वे वहा भूतालयके सामने क्यों ठहरे हैं ?

मज्जक—अज्ज ! वे वहा इसलिये ठहरते है कि—"बहुसख्यक लोगोंकी यह मान्यता है कि हम यक्षकी पूजा-अर्चना करते हैं, और वह हमे धन, जन, पुत्र, स्त्री आदिका सुख देता है, सब अनुकूलताएं उसीके अधीन हैं। समृद्धिका मिलना उसीकी आसीस और पूजाका फल है। इस प्रकारके उल्टे विचारोंमें लोग अनादि कालसे भूलते-भटकते आ रहे हैं। इसी कारण भगवानने उसी यक्षालयके सामने अपनी अशोक छायामे सबको अविरल शाति और विश्राम दिया है, और यक्षके जड पूजक पक्षपातियोंपर शिक्षामृतकी वर्षाका आरम्भ कर दिया है। इसीसे मगधके करोड़ों मनुष्योंके विचारमे परिवर्तन आ गया है। उन्हे अब यह प्रतीत होने लगा है कि हम अपने ही कर्मानुसार सुखी और दुखी होते हैं। यक्ष विचारा क्या किसीके भाग्यमे घुस निकलेगा कभी नहीं। इसीसे अब वहा ईन मीन साढ़े तीन पुजारी रह गये है। जहा मनुष्योंका गमन-आगमन अधिक होता है प्रभु वहा ही ठहरते हैं। आजकलकी गन्दी गलियोंके उपाश्रयोंकी तरह उनके लिये बन्द मकानकी आवश्यकता न थी। भगवान् वहा इसलिये भी ठहरते हैं कि किसी तरह लोगोंको मानव धर्मकी शिक्षा मिले, और उनके द्वारा मिले असख्य प्राणियोंको अभयका दान। अत सेठजी। आप भी वहा जाकर उनका दर्शन लाभ लेकर पवित्र उपदेश सुननेके भाग्यशाली वनें।

* * * *

पूर्णक गुणशीलक उद्यानको देखकर रथसे नीचे उतर गया है।

(१) उसने प्रभुकी सेवामे उपस्थित होनेकी जल्दीमे अपना जड़ाऊ नीलमणि जूता वहीं उतार कर अलग रख दिया, तथा यह विचार आया कि यदि नंगे पैरों जरा मैं भी चलकर देखू तो पता लगे कि अनेक दीनोंको नगे पैरों चलनेसे कितना कष्ट मिलता है, और कुछ सहिष्णुता भी आयेगी। अनेक प्राणी कुचलकर प्राणान्त होनेसे बच रहेगे। यह प्रभुके दर्शनका मुझे पहला लाभ मिलेगा।

(२) सवारी इसलिये छोड रहा हू कि वडप्पनका घमण्ड न रहे। क्योंकि मुझे तो जिज्ञासु वनकर इनसे आत्म-मार्गकी सीख लेनी है। अत. वहा यह मान न रहे कि मैं अरव-खरबपति सेठ हू। न कुछ मैं जन-समाजको अपना भारी-भरखमपन दिखाने ही आया हू। मेरे वैभवकी अपेक्षा उनका त्याग सवसे ऊंचा है। अतः मेरा महत्व इसीमे है कि मिट्टीमें बीजकी तरह खाकसे उदय पानेके लिये प्रभुके वताये मार्गका अनुसरण करनेमे ही मेरा परम कल्याण है।

(३) पान, सुपारी, फूलमाला और फूलोंके गजरे भी उतार फेंके, और उसे रह-रहकर यही विचार आने लगा कि मुझे अव यहा आकर इन्द्रिय विपय लोलुप भी न वनना चाहिये। विलासितासे आत्माका वहुत कुछ पतन हो चुका है। अव तो महान् आत्माके दर्शनसे सादगी, सभ्यता, सहानुभूतिके साथ-साथ सन्तोप पाना चाहिये। इसीसे इस साधकने आकर्पक और मोहक वस्तुए उतार कर अलग कर दी हैं। क्योकि चरित्र-शोल होते समय ये वस्तुए न तो स्मृति पथमे ही आयगी और न आत्म-रमणताके समयमे वाधक ही वनेंगी।

पूर्णक सेठ— वे वहा भूतालयके सामने क्यों ठहरे हैं ?

मज्जक—अज्ज ! वे वहा इसलिये ठहरते है कि—"बहुसंख्यक लोगोंकी यह मान्यता है कि हम यक्षकी पूजा-अर्चना करते हैं, और वह हमे धन, जन, पुत्र, स्त्री आदिका सुख देता है, सब अनुकूलताए उसीके अधीन हैं। समृद्धिका मिलना उसीकी आसीस और पूजाका फल है। इस प्रकारके उल्टे विचारोंमें लोग अनादि कालसे भूलते-भटकते आ रहे हैं। इसी कारण भगवानने उसी यक्षालयके सामने अपनी अशोक छायामे सबको अविरल शाति और विश्राम दिया है, और यक्षके जड़ पूजक पक्षपातियोंपर शिक्षामृतकी वर्षाका आरम्भ कर दिया है। इसीसे मगधके करोडों मनुष्योंके विचारमे परिवर्तन आ गया है। उन्हे अब यह प्रतीत होने लगा है कि हम अपने ही कर्मानुसार सुखी और दुखी होते हैं। यक्ष विचारा क्या किसीके भाग्यमे घुस निकलेगा कभी नहीं। इसीसे अब वहा ईन मीन साढ़े तीन पुजारी रह गये है। जहा मनुष्योंका गमन-आगमन अधिक होता है प्रभु वहा ही ठहरते हैं। आजकलकी गन्दी गलियोंके उपाश्रयोंकी तरह उनके लिये बन्द मकानकी आवश्यकता न थी। भगवान् वहा इसलिये भी ठहरते हैं कि किसी तरह लोगोंको मानव धर्मकी शिक्षा मिले, और उनके द्वारा मिले असख्य प्राणियोंको अभयका दान। अत. सेठजी ! आप भी वहा जाकर उनका दर्शन लाभ लेकर पवित्र उपदेश सुननेके भाग्यशाली बनें।

* * * *

पूर्णक गुणशीलक उद्यानको देखकर रथसे नीचे उतर गया है।

(१) उसने प्रभुकी सेवामे उपस्थित होनेकी जल्दीमे अपना जडाऊ नीलमणि जूता वहीं उतार कर अलग रख दिया, तथा यह विचार आया कि यदि नगे पैरो जरा मैं भी चलकर देखू तो पता लगे कि अनेक दीनोंको नगे पैरों चलनेसे कितना कष्ट मिलता है, और कुछ सहिष्णुता भी आयेगी। अनेक प्राणी कुचलकर प्राणान्त होनेसे वच रहेगे। यह प्रभुके दर्शनका मुझे पहला लाभ मिलेगा।

(२) सवारी इसलिये छोड रहा हूं कि वडप्पनका घमण्ड न रहे। क्योंकि मुझे तो जिज्ञासु वनकर इनसे आत्म-मार्गकी सीख लेनी है। अत· वहा यह मान न रहे कि मैं अरव-खरवपति सेठ हूं। न कुछ मैं जन-समाजको अपना भारी-भरखमपन दिखाने ही आया हूं। मेरे वैभवकी अपेक्षा उनका त्याग सवसे ऊंचा है। अत मेरा महत्व इसीमे है कि मिट्टीमें वीजकी तरह खाकसे उदय पानेके लिये प्रभुके वताये मार्गका अनुसरण करनेमे ही मेरा परम कल्याण है।

(३) पान, सुपारी, फूलमाला और फूलोंके गजरे भी उतार फेंके, और उसे रह-रहकर यही विचार आने लगा कि मुझे अव यहा आकर इन्द्रिय विपय लोलुप भी न वनना चाहिये। विलासितासे आत्माका वहुत कुछ पतन हो चुका है। अव तो महान् आत्माके दर्शनसे सादगी, सभ्यता, सहानुभूतिके साथ-साथ सन्तोष पाना चाहिये। इसीसे इस साधकने आकर्पक और मोहक वस्तुएं उतार कर अलग कर दी हैं। क्योंकि चरित्र-शोल होते समय ये वस्तुए न तो स्मृति पथमे ही आयगी और न आत्म-रमणताके समयमे वाधक ही वनेंगी।

(४) प्रभुके सभा-मंडपमें जब सिंह-बकरी भी एक घाट पानी पीते हैं। कोई किसीका शत्रु नहीं रहता, इसीसे वीतरागताके अनुकरण करनेकी प्रबल उत्कठा जागृत हो जाती है। नृशस और श्वपद जीव तक भी आपसका जातीय द्वेष यहा आकर दूर देते हैं। उन पशुओंने भी हिंस्रभाव छोड़ दिया है। निर्बलपर घातकताका द्वेषभाव भुलाकर साम्यभाव पैदा कर दिया है। यह सब इस सिद्ध पुरुषका ही प्रवल प्रभाव और माहात्म्य है। तब मनुष्योंको तो उच्च कोटिका प्रेम पाठ सीखना चाहिये। यही भाव लेकर पूर्णकने भी अपना कटार खोलकर चार घटेवाले रथमें फेंक दिया। इसी तरह जेबसे चाकू और हाथका फैंसी बेंत भी उसी जगह रख दिये।

(५) यदि ग्राहक मेरे पास कोई क्रय वस्तु खरीदने आता है तब मैं उसे ऊची कक्षाकी बहुमूल्य वस्तु दिखाता हू, न कि घटिया, तब इसी भाति मैं भी भगवान् महावीर प्रभुसे धर्म सुनने जा रहा हूं। तव क्या वे भी मुझे उच्च कोटिका धर्म न कह बतायेंगे ? और मुझे भी कुछ उसपर मनन करने और दृढ़ विश्वासके लिये तैयार होकर जाना चाहिये। यदि अभीसे अभ्यास करूंगा तो चरित्रका पार ले सकूँगा। यही विचार कर बोलनेमे वायु द्वारा होनेवाने हिसा दोषको रोकनेके लिये मुखपर एक वस्त्रका पर्दा कर लिया, और विनयके साथ नतमस्तक होकर पाचों अग झुका दिये, तथा हर्ष और उत्साहसे भरपूर होकर वीतरागकी सेवामे उपस्थित हो गया।

* * * *

प्रभुके दरबारमे उस समय मनुष्योंके अतिरिक्त पशु और

पक्षीगण भी आशासे अधिक सख्यामे उपस्थित होते थे। जिसमें गाय वकरी, सिंह, चीता, खरगोश, स्याहगोश, कुत्ता, विल्ली, भालू, वन्दर, व्याघ्र, हस, मोर, साप, चील, चिडिया आदि अनेक प्राणियोंसे दरवारका एक भाग खचाखच भरा हुआ था। तीन घण्टे तक साम्यवाद और स्याद्वादपर व्याख्यान हुआ। धर्म, प्रेम, जीवनका उदय, ईश्वर, कर्म, सृष्टि आदि सव ही विपयोंकी व्याख्या की गई। इसके अनन्तर सर्वप्रथम वन-जन्तुओंने अनुक्रमसे इस प्रकार त्याग और प्रतिज्ञा लेना आरम्भ किया।

वकरी—प्रभो। मैं दातोंसे छानकर पानी पिया करूंगी, और पक्षके अन्तिम दिन सूखा घास खाया करूंगी। पर उस दिनके लिये घास सुखाकर खानेका विचार तक न करूंगी।

कई पक्षीगण—भगवन्। हम सव रात्रिभोजनका त्याग करते हैं, इसके अतिरिक्त रातका विचरना भी आजसे छोड़ते हैं।

गाय—परमात्मन्। मैं सूखा घास फूस खाकर मनुष्यको दूध दिया करूंगी। और मर जानेपर चमड़ा, हड्डी, सींग आदि और अपने होश-हवास दुरुस्त रहते हुए कभी स्नान भी न करूंगी।

वकरी – नाथ। हम सव मिलकर प्रेम प्यारसे वैठा करेंगे। कभी लडाई न करेंगे, और मनुष्यकी भलाईके लिये अपनी आतें तक देनेमे इन्कार न होगा। चाहे कोई हमे मारकर ही क्यों न खा जाय पर हम किसीसे प्रतिहिंसा और कृतघ्नता न करेंगी।

सिंह और वृक—विभो। जहा तक आप विराजमान हैं वहा तक हम किसीको न मारेंगे।

गाय—तब क्या इतने दिन उपवास ही करते रहोगे ? अच्छा मैं अपना दूध पिला दिया करूंगी। पर मास भक्षण न करना, इसकी तो हडताल बराबर जारी रखना।

सिंह—जगदम्बे। यह भी तो खूनसे ही बनता है। अतः उसे भी न पीऊगा। इसके अतिरिक्त भूखसे मर जाना अच्छा है परन्तु अपने बछड़े भाइयोंका हक छीनना महापातक है। गरीब-की हाय बुरी होती है और वह सिंह जैसोंके लिये भी असह्य है।

सर्प—जगदुद्धारक। हमने पहले जन्ममे क्रोध अधिक किया था। सबमे कलह अधिक लम्बा बढाया था, जिससे हमको लम्बकाय विषकी रस्सी-सी बनकर छातीके बल चलनेका प्राकृतिक दण्ड मिला है। तथापि हमसे हर किसीको भय न लग पावे, अतः संवत्सरीसे वीर जयन्ती तक हम लोग पृथ्वीमे ही छुप रहा करेंगे।

बिच्छू—दयालु पुरुष। सर्दियोंमे मैं भी बाहर न निकलूगा।

कुत्ता – वर्धमान। मुझसे भय खाकर जो जमीनपर बैठ जायगा, उसे कभी न काटूगा। किसीका नमक खाकर उसे हराम भी न करूंगा।

भगवान्—अरे। कोई आदर्श त्याग भी करो। जिससे इस विश्वको तुमसे कोई शिक्षाका पाठ मिले। ये तो मामूली त्याग हैं। कोई यावज्जीवके लिये महात्याग कर दिखाओ। मेरे विचारमे आपको सब प्रकारसे समदर्शी बन जाना चाहिये। जिससे तुम्हारा इस अज्ञान योनिसे उद्धार हो।

सब पशु पक्षी एक स्वरमें—अन्तर्यामी सर्वज्ञ। हमें यह भी स्वीकार है, अबसे हम सब मिलकर छूत-छातके मसलेको उड़ाकर एक तरफ बालाये ताक रखते हैं। हम सब एक ही तालाबमें पानी पीयेंगे। एक नदी, एक कुयेंमें ही सब पानी पिया करेंगे। आजसे जाति मदको निवाप-अजलि देते हैं। बस यह हमारी पूर्ण समदर्शिता है।

आज प्रभुकी सभामें पाशवके आदर्श त्यागसे मानव समाजकी छाती हिल उठी, सबकी गर्दन नीचे झुक गई। मनही मन विचारने लगे कि—आजका पशुवर्ग अपनी हैसियतसे अधिक त्याग दिखा रहा है। यदि हम इनसे कुछ शिक्षा लेकर अधिक त्याग न करें तो मनुष्यके रूपमें पशु जैसे या उससे भी बदतर हैं।

पूर्णक इनके इस आदर्श त्यागपर एकदम गद्गद हो गया। वीर परमात्माके उपदेशसे उसे आज मानो अपना ही अनन्त आत्म-धन मिल गया। सभा विसर्जन हो गई। पूर्णक १२ व्रतोंसे सुसस्कृत होकर अपनेको धन्य मानता हुआ अपने घर आया। आते ही इसने अपने साथ-साथ जीवनका एक पहलू बदल दिया। जिसके सामने इन्द्र, अहमिन्द्र नरेन्द्रके सुखी जीवन भी कुछ न थे।

*   *   *   *

आज बिम्बसार-मगधेश १४ हजार मुनिराजोंको दण्डवत् करते-करते थक गया, सास फूल गयी, कलेजा धीरे-धीरे हिलने लगा। परन्तु फिर भी साहस-पूर्वक ज्ञात-नन्दन-महावीर देवसे यह निवेदन किया कि—

हे देवज्ञ। मैंने अपनी युवावस्थामें अनेक लड़ाइयें लड़ीं अब तक यही हाल है, इस बुढ़ापेमे भी बड़े-बड़े जवान मुझसे लोहा नहीं ले सकते। किसी भी श्रमजनक कार्यसे आजतक कभी थकान न चढ़ी, पर मेरे अन्तर्यामिन। यह मैं सच कहता हूं कि आज तो मुनिवन्दन करने-करते थक गया। क्या उठ-बैठ करनेकी वन्दना पर इसीसे कस बलसे निकल गये। आजसे मै यह मान्यता स्वीकार करता हू कि मनुष्य धर्म करते समय थकनेका बहाना बना लेता है, किन्तु पाप करते कभी नहीं थकता।

भगवान्—श्रेणिक। जब तू धर्मसे अपरिचित था तब एक दिन किसी वनमे एक हिरणीपर वाण चलाया था, और वाण इतने जोरसे लगा कि उसके पेटसे पार होकर किसी वृक्षमे जा चुभा। यह देख तूने उछल-उछलकर अपने इस आखेट कर्मकी प्रशसा की थी। जिससे तेरे भावोंमे इतनी पाप कालिमा आ जमी कि तेरी आत्मामे सातवीं नरक जैसे दल वन्ध गये थे, और वे आज वन्दना करते समय शुभ भाव आनेपर एकदम नष्ट हो गये है। आज ही तूने सच्ची वीरता दिखाई है। आज आत्माने अपने बल-वीर्य-पुरुषार्थ और पराक्रमकी सच्ची स्फुरणा की है। जिससे थकान मालूम होती है, आज तू पापके दगलमे वहिरग भावको मात दे चुका है। आज छः नरक जितने पाप कट गये हैं, अव तो मात्र एक नरक जितने ही रह गये है, यह तेरी हार तुझको मुवारिक होगी, और आज तूने सच्ची जय पाई है, चिन्ताकी वात नहीं है

क।

श्रेणिक—अनन्त-ज्ञान-दर्शिन्। क्या आपका अन्तेवासी श्रावक रहकर अब भी नरकमे जाऊंगा। यदि आज्ञा दें तो इस वार फिर वन्दना करूं जिससे इस एक नरकके पापसे भी पिंड छूटें या कोई और उपाय वताएँ जिससे मेरी वह भयकर काली नरके कुण्डिका भी टूटे।

भगवान्—श्रेणिक। अव उस नमूनेके भाव तो न आयेंगे। परन्तु यदि तू पूनियाकी एक समायिक भी मोल ले सके तो इस भयानक नरकके गर्त्तसे शायद वच भी जाय।

* * * *

मगधके 'राज्ञिक' बाजारमे एक घासकी झोंपड़ी है, जो कि पुरालके फूससे छाई गई है, अगाडी एक बडासा चबूतरा है, जो मिट्टी-गोमयसे मानों अभी लीपा पोता है, इसमे दाहिने कमरेमे रूई और पूनीका ढेर व्यवस्थित है, उसके अन्दर शायद रसोई घर है, जिसमे मात्र एक मिट्टीका तवा और एक मिट्टीकी परात रक्खी है। वड़ेपर भी एक मिट्टीकी ही लुटिया रक्खी है। पीली मिट्टीकी सफाईसे पुता हुआ आगन सोनेको हस रहा है, इस झोपडी मे सफाई इतनी है कि वह राजमहलको भी नसीव नहीं हो सकती श्रेणिक राजा यहीं आकर एक हलकी-सी आवाज़मे कहता है—पूनिया। भाई पूनिया। ज़रा वाहर तो पधारिये। तुमसे कुछ आवश्यक काम है। परन्तु भीतरसे कोई उत्तर न मिला। परन्तु तुरन्त ही एक पडोसीने हाथ जोडकर कहा कि—सरकार। क्या काम है वह अन्दर है, इस समय सामायिक कर रहा है। इसमे

पहर दिन चढ़े तक हिलना भी नहीं है बोलना तो दरकिनार रहा यह उस समय तक आख उठाकर भी न देखेगा। अतः आज्ञा कीजिये। आपका सन्देश एक बजे तक अवश्य पहुचा दूंगा।

श्रेणिक—भाई! हमें तो इससे एक सामायिक मोल लेना था! जिसकी अब ही बात-चीत हो जाती तो ठीक था।

प्रातिवेश्मिक—(स्वगत) हंस कर और कुछ सोचकर (प्रगट) हे राजन्। आपकी बात सुनकर प्रत्येक मनुष्यको आश्चर्य हो सकता है। कारण प्रथम तो सामायिक जैसी आन्तर वस्तु कोई ऐसा वैसा खिलौना नहीं है, जो बाजार गये और खरीद लाये। दूसरे सामायिक कोई छोटे-मोटे मूल्यकी वस्तु नहीं जो १००) २००) रुपया ले-देकर जेबके हवाले कर दी जा सके। तीसरे मुझे यह भी आशा नहीं पड़ती कि पूनिया अपनी सामायिक बेचनेपर राजी हो जाय।

श्रेणिकराज—क्या कहा, राजी न होगा। नगदनारायण वह वस्तु है जिसे देखकर देवताओंके मुँहसे भी लार टपक पड़ती है जिसमे इस बनियेंकी तो क्या असल है। इसके अतिरिक्त इसकी इच्छा हो तो लागतसे दुगुने-चौगुने सौगुने-हजार गुने तक दाम ले ले। उधारका काम नहीं, हम सब नकद चुका देंगे। चाहे तो अभी कोषसे जाकर चेक भुना लावे। श्रेणिक वह राजा नहीं है जिसके पीछे वर्षों तक तगादेवाले गलियोंकी खाक छाना करें और उसकी कल ही पूरी न हो।

प्रातिवेश्मिक—राजन्! अपराध क्षमा हो, पर शायद आप मेरे

अभिप्रायको समझे नहीं, अतः मैं सारी घटना अथसे अंतकत सुनाता हूं। वास्तवमे बात यह है कि अबसे १२ वर्ष पहले यह पूनिया सेठ पूर्णकके नामसे प्रसिद्ध था। एक दिन यह वीर प्रभुके पास पहली ही बार गया था, पहले-पहल उपदेश सुनकर इसने श्रावकके १२ व्रत स्वीकार कर लिये। उस समय यह अरब-खरब धनका स्वामी और इभ्य सेठ था। एक दिन अपने कुटुम्बको एकत्र करके यह कहा कि—जिसको जितना दाय भाग पहुंचता है वह उस दायादका सौ गुणा ले ले। यह कह उसने सबको इसी रीतिसे उनका हक दे दिया। सबको आशासे अधिक भाग बाट दिया। तथा सबको अलग-अलग कर दिया। वे सब अब भी करोड़ोंपर गद्दी बिछाये बैठे हैं, सबकी सुख चैनसे कटती है।

बटवारेसे बच रहे धनसे राजगृहके पूर्व द्वारपर एक अनेकान्त-वाद विद्यालय खोला। जिसमे हजारों विद्यार्थियोंकी पाठ्य व्यवस्था की गई है। जिसका ध्रुव कोप कई करोड़ है।

पश्चिममे नगर द्वारसे कुछ दूर भिषगालय स्थापन किया है। जहा लाखों मनुष्य और पशु चिकित्सा द्वारा आरोग्य लाभ पाते हैं।

और उत्तरके नगर द्वारकी ओर इसने 'अनाथ-रक्षक-गृह' बनवाया। जिसमें मनुष्य और पशुओंको आरामसे रक्खा जाता है। अनाथोंके लिये खाने-पीने पढने तककी उत्तम व्यवस्था है। वहा अनाथोका सुखसे भरण-पोपण होता है।

तथा दक्षिणकी ओर 'उदासीनाश्रम' भी है जिसमे पक्की उमरके

स्त्री-पुरुष अलग-अलग रक्खे जाते हैं। वहापर वे अपने बुढापेके जीवनको धर्म और सुख शान्तिसे बिताते हैं। जितनी सेवा उनकी घरपर सन्तान नहीं करती होगी उतनी वहापर होती है। नगरके मध्य भागके चौक बाजारमे इसका एक महाकाय आर्हत पुस्तकालय है। जहा जनताको आगम-शास्त्र स्वाध्याय करनेका अवसर संसार भरकी भाषाओंमे मिलता है, और व्यावहारिक शिक्षाके लिये भी लाखों पुस्तकें है।

यहींपर ग्रामीण बन्धुओंके सुभीतेके लिये हजारों चलते-फिरते पुस्तकालयोंका भी सुन्दर प्रबन्ध किया गया है। इसकी सब संस्थाओंका ट्रस्टी महामात्य अभयराजकुमार है।

इसपर भी एक दिन इसने विवेकसे काम लेकर विचारा कि मगध, अग, बंग और कलिंगमे मैंने किसीका कोई ऋणी नहीं छोड़ा है। सबको अनृण किया, दान भी किया, जनताके लाभार्थ संस्थाएं भी बना दीं, तब भी बहुत-सा धन बच गया है। इसका निवेड़ा ही नहीं आता। यह लक्ष्मी फिर भी बन्दरीके बच्चेकी तरह चिपटी ही रहती है, मेरा पीछा ही नहीं छोडती। उसने एक दिन सिर्फ सात सिक्के रखकर बचा-खुचा सब धन कूड़े-करकटकी तरह बाजारमे फेंक दिया, और फूसकी झोपडी बाधकर तबसे यह यहा ही रहता है। सात सिक्के ही इसकी निजी पूँजी है। इससे अधिक यह फूटी कौड़ी भी लेनेको तैयार नहीं है। रूई और पूनियोंका व्यवसाय करके अपना उदर निर्वाह करता है। पगडी, धोती, चादर, छोड़कर इसकी कोई पोशाक नहीं

है। सामने जो तवा देख रहे हो राजन्! वह भी मिट्टीका है। अतः मुझे यही विचार आता है कि आप इसकी शुद्ध और बहुमूल्य सामायिक किस प्रकार क्या देकर खरीद सकोगे। आपकी यह इच्छा शायद ही पूरी हो। कुछ भी हो, यह सौदा आपको बहुत महँगा पड़ेगा। क्योंकि इसकी सामायिक चलती-फिरती, हँसती-बोलती बतराती निन्दा करती फिल्म नहीं है। इसकी सामायिक तो सुमेरुकी तरह अचल तथा रत्नाकरकी तरह अमूल्य और गम्भीर है।

* * * *

श्रेणिक—जिनराज! उसकी एक सामायिकका क्या मूल्य है?

भगवान्—संसारकी सब सम्पत्ति देकर भी उसकी एक सामायिकका मूल्य नहीं चुकाया जा सकता।

गौतम—राजन! चौथी भूमिकापर हो इसलिये तुम्हें यह सामायिक महँगे मोल पड़ रही है।

श्रेणिक—देव! जिस दिन सम्पूर्ण त्यागके द्वार खोल दूंगा उसी दिन सामायिक मेरी है, और वह मेरी अक्षय निधि है। इसे पानेके लिये श्रीमानसे गरीब बनना होता है, बस ज़रा इतनी ही कठिनाई है जिसके लिये विवश हूं।

सोणदण्ड

चम्पानगरमें धनिक विद्वान् और सुशीलाग्रणी सोणदण्ड नामक एक ब्राह्मण रहता था। सैकड़ों विद्यार्थी इसे मान देकर इसके पास पढ़ते थे।

एक बार महात्मा बुद्ध चम्पानगरके बाहर गगरा पुष्करणीके तीरपर आकर ठहरे। उस समय उनके पास ५०० भिक्षु थे, इनका उपदेश सुननेके लिये नगरके सब ब्राह्मण जा रहे थे। जिन्हे देखकर सोणदडने कहा भाइओ। तुम वहा न जाओ बल्कि मुझे वहा जाने दो। ब्राह्मणोंने कहा, आप जैसे विद्वानोंको कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं। इस आचरणसे आपकी प्रतिष्ठाको हानि पहुचेगी।

सोणदण्ड नम्र और विनीत था और गौतम बुद्धके माहात्म्यको जानता था। इसीसे उनकी योग्यताकी प्रशंसा की और कहा कि ये ऐसे ही महात्मा है, इनके पास मेरा जाना ही आवश्यक है। यह कह सोणदण्ड बहुतसे ब्राह्मणोंके साथ गौतम बुद्धके पास गया,

और ब्रह्म इस विषयकी चातुर्यपूर्ण चर्चा छिड़ी कि वास्तविक ब्राह्मणत्व किसमे है।

गौतमबुद्ध सोणदण्डके मनका अभिप्राय समझकर यों बोले—

सोणदण्ड! वह कौन-सी वस्तु है कि जिसके होनेके कारण ब्राह्मण यह कहनेका गर्व रखता है कि मैं ब्राह्मण हूं।

सोणदण्ड—गौतम! पाच बातें ही तो ब्राह्मण 'मैं ब्राह्मण हूं' यह यथार्थरीत्या कह सकता है।

(१) प्रथम वह माता-पिताके उभयवंश विशुद्धमे उत्पन्न हुआ है।

(२) तीनों वेदोंमे और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य शास्त्रोंमें प्रवीण है।

(३) सुन्दर और गौर वर्ण है, उसका दर्शन देखनेपर सबको प्रिय लगता है, और भावितात्मा भी है।

(४) शीलवान्—चरित्रवान भी परिपूर्ण है।

(५) प्रज्ञावान्—बुद्धिमान् है।

गौतमबुद्धने पूछा कि सोणदण्ड! रूप, कुल, श्रुत, शील और प्रज्ञा इन पाचोंमेसे यदि एक भी कम हो तो कुछ हानि तो न होगी?

सोणदण्ड—हा हा क्यों नहीं, रूप न हो तो कोई परवाह नहीं। बाकी चार हों तो बस है।

बुद्ध—यदि इन चारोंमेसे किसीको कम कर दिया जाय तब?

सोणदण्ड—श्रुत विद्या न हो तो कोई हानि नहीं।

बुद्ध—बाकीके तीनोंमेसे यदि किसी एकको और कम कर दें तो?

सोणदण्ड—हां कुल न हो नो भी काम चल सकता है।

यह सुन और ब्राह्मण चमक उठे। पर वह उन्हे शान्त करता हुआ बोला कि भाइयो। मैं कुछ अपने रूप, कुल और विद्याकी निन्दा नहीं कर रहा हूं बल्कि यह कहता हूं कि ब्राह्मणत्वमें किस-किस उपयोगी विषयकी आवश्यकता है यों समझा कर उनको शान्त किया।

बुद्ध—अब तो दो बाकी रह जाते है शील और प्रज्ञा। पर यदि इनमेसे भी किसी एकको कम कर दिया जाय तब तो शायद कोई हानि न होगी न ?

सोणदण्ड—नहीं साहब, जिस प्रकार दो हाथ या दो पैर एक दूसरेकी सहायतासे धुलकर साफ होते हैं। इसी प्रकार शील और प्रज्ञा भी एक दूसरेसे शुद्ध होते हैं। शीलवान्को ही प्रज्ञा उत्पन्न होती है, और तब कुछ प्रज्ञावानमे शील गुण आ सकता है।

बुद्ध—क्या शील और प्रज्ञाको तुम जानते हो ?

सोणदण्ड—नहीं गौतम। मैं आपके पास इसीको जाननेकी इच्छा करता हूं।

इसके अनन्तर बुद्धदेवने अपने धर्मोपदेशमेंसे दो मुख्य तत्व शील और प्रज्ञाका स्वरूप कहकर समझाया।

महात्मा बुद्ध ब्राह्मणोंके द्वेपी न थे वल्कि ब्राह्मणोंको अपना यथार्थ भान करानेके लिये विष्णुके अवतार थे जिन्होंने यह बतानेकी चेष्टा की थी कि ब्राह्मणोंके पाच लक्षणोंमे प्रज्ञा और शील यही दो मुख्य गुण है, और ब्राह्मण विद्यार्थियोंमे ये दोनों बातें अवश्य आ

जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त बुद्धदेव यह भी निर्णय करके बताते हैं कि दोनों हाथ इकट्ठे किये विना धुल नहीं सकते तथापि शील (Character) मनुष्यका दाहिना हाथ और प्रज्ञा (Wisdom) वाया हाथ है।

* * * *

जो इस लोकमें शुद्ध अग्निके समान पापसे रहित होनेके कारण पूजित है विशेपज्ञ उसे ही ब्राह्मण मानते हैं। जो स्वजनादिमें आसक्त नहीं है और सयमशील होकर कष्टमे शोक नहीं करता तथा महापुरुपोंके वचनामृतोंमे आनन्द मानता है वही ब्राह्मण है। जिस प्रकार शुद्ध सुवर्ण मैल रहित होता है उसी प्रकार मल और पापसे रहित तथा राग-द्वेष और भयसे पर रहनेवाला ब्राह्मण होता है। जिस सदाचारी, तपस्वी, दमितेन्द्रियने तपसे मास और लहूको सुखा दिया हो, कषायोंको जीतकर जो शान्ति प्राप्त है मैं उसे ब्राह्मण समझता हूं।

इराक-महामात्य

काशीपुर नरेशका दर्वार अमीर-उमराओंसे भरपूर है। न्याय-इन्साफ होनेके अनन्तर भाट-चारण महाराजका यशोगान करने लगे है। कविताओंमें महाराजा चक्रवर्ती सिद्ध किये गये है। बलमे भीमको उपमामें रक्खा गया है। तेजमें सूर्यको आकाशका प्रवासी बनाकर मानो उसे आकाशमें टाग दिया गया। पवित्रतामे सिद्धहस्त बनानेके लिये चादको कलंकित किया गया तथा पृथ्वीमें महाराजके भयसे ही भूकम्प होता है। वनस्पतिया महाराजके कृपाजलसे ही हरी-भरी रहतीहै। समुद्रने तरगोंकी भुजायें महाराजके चरण छूनेके लिये उठाई है। इस प्रकार कवियोंने जमीन और आस्मानके कुलावे मिला दिये मगर राजाके होठोंपर मुस्कुराहट न आई। उसका मुखमण्डल कमलकी तरह न खिल सका, उसे ये कवितायें उड़दका छिलके के समान भद्दी नीरस और अरुचिकर प्रतीत होती थीं।

राजा—कौटुम्बिक पुरुष। राज-ज्योतिषीजीको विप्रपल्लीसे शीघ्र बुलाकर लाओ।

* * *

राज्य-ज्योतिषी नहा धोकर, शुद्ध वस्त्र पहिनकर, भोजन पानसे निवृत्ति होकर, भविष्य फल आदि उचित सामग्रीसे कक्षा भरपूर करके नंगे सिर ही राज दर्बारमे आकर उपस्थित हो गये तथा राजाजीको स्वस्ति कहकर यथा स्थान बैठ गये।

राजा—आजकल मुझे यही चिंता सताती रहती है कि पिताके दिये राज्यको अबतक बढ़ा न सका हूं। इस समय तक १८ पुत्रोंका बाप होते हुए भी एक माण्डलिक राजाकी हैसियतमें भी न रहू यह मेरे लिये इस समय असह्य है। अतः कोई ऐसा उपाय बताइये कि जिससे मेरा राज्य, कोष, राष्ट्र आदि सभी कुछ वृद्धिको प्राप्त हो।

ज्ञानगर्भ—आपके प्रश्नको मैंने खूब ही सोच विचार लिया है। मगर आपके जन्मागमें तो ३ ग्रह उच्च राशिपर हैं। चक्रवर्ती योग है। तो भी आपके पुत्र यद्यपि संख्यामे १८ हैं, परन्तु इनमे भाग्यशाली कोइ नहीं है। पूर्ण दरिद्र योग पडा हुआ है। इनका दुर्भाग्य आपके शुभ ग्रहोंके फलको रोक रहा है। उदय नहीं होने देते। अतः राजन्, मैं स्वय चिन्तित हू।

राजा—शास्त्रोंमे मूर्खको छोडकर शेष सबकी औषधि बताई है। अत: क्या इसका कुछ प्रतिकार आपको याद नहीं है ?

ज्ञानगर्भ—क्यों नहीं महाराज। कलहवर्द्धक आचार्य, ज्ञान शून्य गुरु, दरिद्र भाई, भाग्यहीन सन्तान विष वृक्षकी तरह उच्छेद

शराक-महामात्य

काशीपुर नरेशका दर्बार अमीर-उमराओंसे भरपूर है। न्याय-इन्साफ होनेके अनन्तर भाट-चारण महाराजका यशोगान करने लगे है। कविताओंमें महाराजा चक्रवर्ती सिद्ध किये गये हैं। बलमे भीमको उपमामें रक्खा गया है। तेजमें सूर्यको आकाशका प्रवासी बनाकर मानो उसे आकाशमें टाग दिया गया। पवित्रतामे सिद्धहस्त बनानेके लिये चादको कलंकित किया गया तथा पृथ्वीमे महाराजके भयसे ही भूकम्प होता है। वनस्पतिया महाराजके कृपाजलसे ही हरी-भरी रहतीहै। समुद्रने तरंगोंकी भुजायें महाराजके चरण छूनेके लिये उठाई हैं। इस प्रकार कवियोंने जमीन और आस्मानके कुलावे मिला दिये मगर राजाके होठोंपर मुस्कुराहट न आई। उसका मुखमण्डल कमलकी तरह न खिल सका, उसे ये कवितायें उडदका छिलके के समान भद्दी नीरस और अरुचिकर प्रतीत होती थीं।

राजा—कौटुम्बिक पुरुष! राज-ज्योतिषीजीको विप्रपल्लीसे शीघ्र बुलाकर लाओ।

* * *

राज्य-ज्योतिषी नहा धोकर, शुद्ध वस्त्र पहिनकर, भोजन पानसे निवृत्ति होकर, भविष्य फल आदि उचित सामग्रीसे कक्षा भरपूर करके नगे सिर ही राज दर्बारमे आकर उपस्थित हो गये तथा राजाजीको स्वस्ति कहकर यथा स्थान वैठ गये।

राजा—आजकल मुझे यही चिंता सताती रहती है कि पिताके दिये राज्यको अवतक वढ़ा न सका हूं। इस समय तक १८ पुत्रोंका वाप होते हुए भी एक माण्डलिक राजाकी हैसियतमे भी न रहूं यह मेरे लिये इस समय असह्य है। अतः कोई ऐसा उपाय वताइये कि जिससे मेरा राज्य, कोप, राष्ट्र आदि सभी कुछ वृद्धिको प्राप्त हो।

ज्ञानगर्भ—आपके प्रश्नको मैंने खूब ही सोच विचार लिया है। मगर आपके जन्मांगमे तो ३ ग्रह उच्च राशिपर हैं। चक्रवर्ती योग है। तो भी आपके पुत्र यद्यपि संख्यामे १८ हैं, परन्तु इनमे भाग्यशाली कोइ नहीं है। पूर्ण दरिद्र योग पडा हुआ है। इनका दुर्भाग्य आपके शुभ ग्रहोंके फलको रोक रहा है। उदय नहीं होने देते। अतः राजन्, मैं स्वयं चिन्तित हूं।

राजा—शास्त्रोंमे मूर्खको छोड़कर शेप सबकी औपधि वताई है। अतः क्या इसका कुछ प्रतिकार आपको याद नहीं है?

ज्ञानगर्भ—क्यों नहीं महाराज। कलहवर्द्धक आचार्य, ज्ञान शून्य गुरु, दरिद्र भाई, भाग्यहीन सन्तान विप वृक्षकी तरह उच्छेद

करने योग्य हैं। मगर इन्हें नष्ट करनेवालेको अपना दिल १० इञ्चका बनाना चाहिये।

राजा—मुझे आपपर पूर्ण विश्वास है, जो भी इलाज बतायेंगे निर्मोह होकर करनेको तैयार हू।

ज्ञानगर्भ—अच्छा तो सुनिये महाराज। महाभारतमें लिखा है कि दुर्योधनके जन्म लेते ही काली आधी आई भूकम्प हुआ, आकाशमे तारे टूटने लगे, दिनमें उल्लू बोला, राज्यछत्रका डंडा टूट गया। तब राजा धृतराष्ट्रने घबडाकर कोष्टुकी नैमित्तिकको बुलाकर पूछा था कि यह लडका गाधारीको पहले पहल हुआ है। मगर अभीसे अपशकुनोंका जमघट शुरू हो गया है। जरा इसका भाग्य तो विचारो, कैसा है। जो हो, सच बताओ। शर्म न करना, सत्य बोलना।

पंडित—राजन्। जरा विदुरको भी बुलवा लीजिये, वे बड़े चतुर राजनीतिज्ञ और भविष्यज्ञ भी हैं। हमारी भूलका शोधन उनके द्वारा होता है। थोड़ीसी देरमे विदुर भी आ गये। उनके सन्मुख ज्योतिषियोंने परामर्श करनेके बाद विवेक और विनयसे यह कहा कि—

राजन्। आपके कुलमे यह काटेकी तरह खटकनेवाला बालक पैदा हुआ है। इसीके कारण घरमे कुसम्प और आपसी द्वेष भर जायगा। व्यसनका दावानल सुलगेगा। परस्पर एक दूसरेको घातक दृष्टिसे देखेगा। इसीके आरंभसे संघर्ष पैदा होगा, घरमे हत्यायें होंगी। खूनकी नदिया वह चलेंगी, कुल नष्ट हो जायगा। यह

सत्य है और नग्नसत्य है इसे लिख लीजिये, तिल मात्रका भी फर्क न होगा।

धृतराष्ट्र—बड़े भयानक और नीच तथा पापक ग्रहमें जन्मा है। भला खैर, इसका कोई उपाय ऐसा बताइये जिससे क्रूरग्रहका दोप शात हो।

सबके सब पडित—हा यदि इसको अभी मरवा डाला जाय तो ग्रह इसका रुधिर पीकर शात हो सकता है। यदि हमारा विश्वास न करते हो तो भक्त विदुरकी सम्मति लीजिये, देखो, यह क्या कहता है।

विदुर—ये सब ठीक कहते हैं। वह सोना किस कामका जिससे कान टूट जाय, वह गुरु किस कामका जिसमे शाति भग हो जाय वह स्त्री किस काम की जिससे घर कुट्टनियोंका अड्डा बन जाय, वह पुत्र किस काम का, जिससे कुल नाश होकर खप जाय। यदि आपको कुल, राष्ट्र, सम्पसे प्यार है तो पुत्रको मार डालना अच्छा होगा। कुपुत्र, कुगुरु, कुधर्म, कुदेव, कुस्त्रीका पक्ष कभी न किया जाय। परन्तु पुत्रकी ममता बुरी होती है। इसका छोडना सहज नहीं है। धृतराष्ट्रने किसीकी न मानी और वह आगे चलकर कुलके लिये किस प्रकार घातक सिद्ध हुआ, यह संसारसे छुपा नहीं है।

इसी भांति राजन्। आप भी अपने पुत्रोका ममत्व रक्खोगे तो आपको धृतराष्ट्रसे कुछ कम पश्चात्ताप न उठाना होगा। इससे अधिक मैं और क्या कह सकता हू।

*   *   *   *

गरीव और अन्त्यज बखेरमें पैसे, रुपये और सोने तकके सिक्के लूट रहे हैं। जिसकी भूमिपर जरा भी निगाह पड़ जाती है उसीके वारे न्यारे हो जाते है। "मिट्टीमें हाथ डालकर सोना पाया" वाली कहावत चरितार्थ होने लगी है।

इतनेमे चलो, हटो, बचो, रास्ता छोड़ो की आवाज आने लगी। देखते ही देखते बड़ी सुन्दर पालकी हजारों सैनिकोंसे परिवृत्त होकर आई और चली गई। इसके पीछे सैकड़ों बराती सुवर्णमणि भूषणोंसे भूषित मानो चादके आस-पास तारोंकी सी छटा दिखा रहे थे। इनके हाथमें नंगी तलवारोंकी पक्तिया दामिनी-सी चमककर चडिकाकी जिह्वाकी तरह दीख रही थी। हाथियोंके शरीरकी कालस वायुयानमे बैठे हुए विद्याधरोंको वायुयानसे ऐसी मालूम होती थी मानों आकाश भूतलपर आ लगा है। घोड़ोंकी टापोंसे रेतने आकाशमे जाकर आकाशके दीपकको घेर लिया जिससे नीचेवालोंको यह भ्रम होता था कि पृथ्वीका आधा भाग कटकर ऊपर चला गया है।

राजा गरुड़नारायण अपने महलसे यह सब रचना देखकर प्रसन्न चित्त होकर प्रधानसे बोले कि—महामात्य। यह किसका उत्सव है ?

महामात्य—पृथ्वीनाथ। सेनानीके पुत्रका विवाह है। यह उसीकी वरात जा रही है। जैसा लडका योद्धा है भाग्यसे उसे वैसे ही वीरागना रमणी मिलेगी। वह दो मन लोह बाधकर रणागणमे आनेवाली वीर युवती सुनी जाती है। यह क्षत्रिय कुलके गौरवको

चार चाद लगा देने जैसी वात है। आज वे दाम्पत्य जीवनमे वधनेवाले हैं। उसीका यह जुलूस निकाला गया है।

राजा—(आसू पोंछकर) यदि कोई मेरा पुत्र वच रहता तो इससे भी अधिक सुन्दर विवाह महोत्सव मनाया जाता। परन्तु क्या करूं मैंने स्वयं ही अपने हाथों कुल्हाडी चला दी है। उनके कहनेसे १८ के १८ यमकी भेट कर दिये जिस आशासे यह कुल निकन्दन किया गया था वह आशा भी तो पूर्ण न हो पाई। हाय! इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः।

प्रधान—राजन्! खेद मत कीजिये। अत्यन्त लोभका यही परिणाम है। पापका वाप लोभ होता है। यह महापुरुषो तकसे भी अकृत्य करा डालता है। इसीसे आज संगठनकी माला टूटी पड़ी है और प्रेमके मनके दूर-दूर विखरे पड़े हैं। तृष्णा और वासनाके वश होकर मनुष्य धर्म और अध्यात्मका भी गला दवा सकता है। इसीसे मनुष्य नृशस होकर लहूकी धारासे पृथ्वीको रंग डालता है। राजन्! जिन-जिनको आपने लोभ देकर आज्ञा दी थी उन्होंने आपके १७ पुत्रोंका अन्त कर दिया है और अन्तिम पुत्र मेरे सुपुर्द किया गया था, परन्तु अपराध क्षमा हो, मैंने उसे न मारकर अपने घरमे छिपाकर रख लिया है। उसको अध्ययन कराता हूं। भूमिगृहमे यथोचित पोषण होता है। धनुर्वेद विद्या विशारदका पद पा चुका है। आज्ञा हो तो अभी उपस्थित किया जाय।

राजा प्रधानको छातीसे लगाकर वोला कि महामात्य! तू मेरा सच्चा राजसेवक है। मेरे वशकी रक्षा तूने की। तुझे अपना सर्वस्व

गरीब और अन्त्यज वसेरमे पैसे, रुपये और सोने तकके सिक्के लूट रहे हैं। जिसकी भूमिपर जरा भी निगाह पड़ जाती है उसीके वारे न्यारे हो जाते हैं। "मिट्टीमे हाथ डालकर सोना पाया" वाली कहावत चरितार्थ होने लगी है।

इतनेमे चलो, हटो, बचो, रास्ता छोड़ो की आवाज आने लगी। देखते ही देखते बड़ी सुन्दर पालकी हजारों सैनिकोंसे परिवृत्त होकर आई और चली गई। इसके पीछे सैंकड़ों बराती सुवर्णमणि भूषणोंसे भूषित मानो चादके आस-पास तारोंकी सी छटा दिखा रहे थे। इनके हाथमे नगी तलवारोंकी पक्तिया दामिनी-सी चमककर चंडिकाकी जिह्वाकी तरह दीख रही थी। हाथियोंके शरीरकी कालस वायुयानमे बैठे हुए विद्याधरोंको वायुयानसे ऐसी मालूम होती थी मानों आकाश भूतलपर आ लगा है। घोडोंकी टापोंसे रेतने आकाशमे जाकर आकाशके दीपकको घेर लिया जिससे नीचेवालोंको यह भ्रम होता था कि पृथ्वीका आधा भाग कटकर ऊपर चला गया है।

राजा गरुडनारायण अपने महलसे यह सब रचना देखकर प्रसन्न चित्त होकर प्रधानसे बोले कि—महामात्य। यह किसका उत्सव है ?

महामात्य—पृथ्वीनाथ। सेनानीके पुत्रका विवाह है। यह उसीकी बरात जा रही है। जैसा लडका योद्धा है भाग्यसे उसे वैसे ही वीरागना रमणी मिलेगी। वह दो मन लोह बाधकर रणागणमे आनेवाली वीर युवती सुनी जाती है। यह क्षत्रिय कुलके गौरवको

चार चाद लगा देने जैसी वात है। आज वे दाम्पत्य जीवनमे यंधनेवाले हैं। उसीका यह जुलूस निकाला गया है।

राजा—(आसू पोंछकर) यदि कोई मेरा पुत्र वच रहता तो इससे भी अधिक सुन्दर विवाह महोत्सव मनाया जाता। परन्तु क्या करूं मैंने स्वयं ही अपने हाथों कुल्हाडी चला दी है। उनके कहनेसे १८ के १८ यमकी भेट कर दिये जिस आशासे यह कुल निकन्दन किया गया था वह आशा भी तो पूर्ण न हो पाई। हाय! इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट'।

प्रधान—राजन्। खेद मत कीजिये। अत्यन्त लोभका यही परिणाम है। पापका वाप लोभ होता है। यह महापुरुषो तकसे भी अकृत्य करा डालता है। इसीसे आज सगठनकी माला टूटी पडी है और प्रेमके मनके दूर-दूर विखरे पड़े हैं। तृष्णा और वासनाके वश होकर मनुष्य धर्म और अध्यात्मका भी गला दवा सकता है। इसीसे मनुष्य नृशस होकर लहूकी धारासे पृथ्वीको रग डालता है। राजन्! जिन-जिनको आपने लोभ देकर आज्ञा दी थी उन्होंने आपके १७ पुत्रोंका अन्त कर दिया है और अन्तिम पुत्र मेरे सुपुर्द किया गया था, परन्तु अपराध क्षमा हो, मैंने उसे न मारकर अपने घरमे छिपाकर रख लिया है। उसको अध्ययन कराता हू। भूमिगृहमे यथोचित पोपण होता है। धनुर्वेद विद्या विशारदका पद पा चुका है। आज्ञा हो तो अभी उपस्थित किया जाय।

राजा प्रधानको छातीसे लगाकर वोला कि महामात्य। तू मेरा सच्चा राजसेवक है। मेरे वंशकी रक्षा तूने की। तुझे अपना

देकर भी हम ऋणसे उऋण नहीं हो सकता। अत वरदान माग सब कुछ तेरा ही है।

प्रधान—राजन! यह तो आप जानते ही हैं कि हमारी श्रावक जाति है। हम कुछ दिनसे मध्यप्रदेश छोडकर यहा आ बसे है। यहा हमारे धर्मगुरु न जाने कबसे आना बंद कर चुके है। इससे हमारा धर्म लुप्तप्राय हो चुका है। इसीसे हमे लोग शराकके साथ मांझी शब्द अन्वयीभूत करके शराक माझीके नामसे पुकारते हैं। अत. धर्मगुरुओंके अभावमे एक पुरोहित मागता हू जिसके द्वारा हम अपना क्रिया कर्म करा सकूं। क्योंकि अन्य देशीय होनेके कारण हमे कहीं लोग भी अस्पृश्य कहने-समझने न लग जायँ। यदि विप्रदेव हमारे घरमे आने लगे तो हम स्पृश्य रह सकते हैं।

काशीपुर महराज गरुडनारायणाजीने कहा कि तथास्तु। जिस श्रावकजातिके धर्मगुरु विहार, वंगाल, उड़ीसामे पुष्कल सख्यामें विचरते थे आज उनके अभावमे विहार और वंगाल तथा कलिंग देशसे आपका प्यारा जैनधर्म लुप्त हो चुका है। यह हमने वीर पिताके वाद कपूतपना किया है जो पितामहकी धर्म भूमिको धर्ममे स्थिर न कर सके। गुरुमोह, शिष्य मोह, देशमोह जैसे अप्रशस्त मोह जालमे फॅस कर वीर परमात्माकेदेशको धर्म शून्य करनेवाले हमसे कपूतको छोड़-कर और कौन हो सकता है? उस भग्न शेप श्रावक जातिमे धर्मगुरुका अभाव होते हुए भी इस शराक जातिमे अहिंसा धर्मका कुछ शेषाव-शेष अवश्य रह गया है। यदि मुनि समाज इस देशमे आकर विचरने लगे तो शराकसे श्रावक वनाये जा सकते हैं। यदि जैनमिशन

जैसी संस्था स्थापित की जाय और उनमे प्रचार किया जाय तथा उन्हें हमारे श्रावक फिरसे गले लगाकर अपना लें और उनके लिये जैन-विद्यालय खोल दें तो अब भी आपकी संख्या दो-चार वर्षके परिश्रमसे पाच लाखकी जगह छ लाख बन सकती है जो इस टूटे-फूटे समयमे ६ करोड़ जितना काम दे सकती है। आशा है, धनी-मानो समाजके नेता इस ओर अवश्य ध्यान देंगे और १०-२० मुनि बगाल और बिहारकी ओर अवश्य विहार करनेका उत्साह पैदा करेंगे।

पराई पीर

वह कंधेपर धनुष लगाये हुए है और तरकस है पिछले भागमे। इसके पैने २ शिलीमुख (बाण) यमसे मुलाकात करा देते हैं। इसकी आकृति क्रूर है। भावभगी है रीछकी-सी डरावनी। इसके हाथपर बाज बैठा है, हाथमे चमड़ेका दस्ताना फँसा रखा है। कितना खूख्वार शिकारी है। इसीसे भयानक वनमे पक्षी-समाज कोलाहल मचाने लगा है। सब अपनी-अपनी जान छिपाये हुए झुर्मुटोंमे जा छिपे हैं। पर बेचारा कपोतराज बड़ी आपत्तिमे है। मारे फिकरके परेशान हो गया है। प्यारी कबूतरीकी तलाशमे सरल गतिसे उड़ा जा रहा है। आकृति कितनी मोहक और भोली है। रग बिल्कुल सफेद और लाल पैर कितने सुन्दर है। विधाताने मानों फुर्सतमे बैठकर बनाया है। इसीसे मानो संसार भरकी स्वच्छताको इसीकी पांखोंमे व्यय कर दिया है। पर हाय। काल व्याधकी दृष्टि इसपर पड़ गई है। यह लो, इस गरीबके पीछे बाज भी छोड दिया है। आह! मानों सरपर मौत मँडराती आ रही है। बिल्कुल बेबस हो चला

है। जान बचानेके लिये कहा छिपें ? हिम्मत बाधकर अबकी बार तिर्छी चालसे शहरकी तरफ उड चला है। खाई, कोट, किला, बाग-बगीचा सबको लाघता चला गया, पर इसे अपनी नन्हीं-सी जान बचानेको कहीं जगह सूझ न पडी। हाय! इसे अब कहीं त्राणके लिये स्थान नहीं। एक तरफ दम फूल रहा है, श्वासपर श्वास आ रहे हैं। कलेजेकी धड़कन जोरोंपर है। दूसरी ओर शत्रु पंजा फैलाये सन्निकट आनेमे दत्तचेष्ट है। कहां जाय किसके पास जाकर फर्याद करे। सबका पालक राजा होता है, यही सबका न्याय अपने ऊचे आसनपर बैठकर करता है। इसीसे यह शरीरधारी न्यायावतार होता है जिसकी सभामे सबको दाद मिलती है। दीनबन्धु यही है, उसीके पास चल, तेरा वही सच्चा मित्र है—यही आस बाधकर राजसभाकी ओर मुडा। पर बाज! वह तो बहुत निकट आ लगा है, पकड़ा ही चाहता है। अबका वार खाली गया, इस चक्करदार गतिसे जानका पलड़ा भारी हो गया है। यह लो, दम टूट ही गया और आकाशसे झम्पा लेकर पृथ्वीकी ओर गिरा कि एक आनमें अपनेको किसीकी सुकुमार गोदीमे पाया, जिसके हाथोंका स्पर्श बता रहा है कि अब यहा किसका डर है ?

* * * *

व्याध—प्रजापालककी जय हो। राजन! भूखा हूं, मेरा शिकारी बाज भी भूखा है, यही एक शिकार ४ घण्टेमे कठिनाईसे हाथ लगा है। नाथ! प्रदान कर दीजिये, लेकर अभी चला जाऊंगा।

महाराजा मेघरथ—भाई। रोटी, दाल, चावल, भुगड़े, हलवा, सुहाली, मठ्ठा, मिठाई, लड्डू, पेड़े आदि अभी मंगाए देता हू। खाकर तृप्त हो जाओगे। पर इसे न मागो, यह मेरी शरणमे है। यह सारे राज्यसे भी अदेय है।

व्याध—न्यायशील सरकारकी दुहाई है। मुझे बचपनसे मास ही प्रिय है। इसे न छोड़ सकूगा। मैं आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये विवश हू, पर यह शिकरा मासके अतिरिक्त और कुछ नहीं खाता। सरकार हमसे भूखोको यहीं सदाव्रत दे दीजिये। इस दरबारमे न्याय होता है। आपने ही यहा धर्मके काटेमे न्याय और सत्यको तौलकर बताया है। कबूतरको कृपया अर्पण कीजिये, आपकी आत्माको अनन्त पुण्य होगा। देर हो रही है, भूख कलेजा काट रही है। आह। बड़ी भूख लगी है (यह कहकर एक ओर गिर पड़ता है)।

महाराजा मेघरथ—(कबूतरकी ओर देखकर) अहह। बेचारा हथेलीपर रक्खे हुए जुवागलकी तरह किस प्रकार काप रहा है। कलेजेको तो देखो, वायुसे प्रेरित ध्वजाकी तरह जल्दी-जल्दी हिल रहा है।शरीरमे लरजा बार-बार आता है। कातर दृष्टिसे देख रहा है, कितना विह्वल हो उठा है। शायद समझ रहा है कि ससारमे कोई मदद करनेवाला व्यक्ति और निर्भय स्थान है तो यही है। यही ईश्वर परमेश्वर सर्वशक्तिमान् परब्रह्म है। अशरणको निभाना ही भक्तियोग, कर्मयोग, राजयोग और आत्म-योग है। इसीसे राजाके शरणमे बहुत ऊ'चेसे आकर पडा है।

हाय। अपनी शरणभूत गोदमेंसे निकालकर किस प्रकार अलग कर दूं। कभी नहीं, कभी नहीं, महा अन्याय होगा। बेचारा कपड़ोंमे छिपा जा रहा है। बालककी तरह दामन पकड़े हुए है। ओह। अपनी-अपनी जान सबको कितनी प्रिय है। इस प्रकारकी जानको बचाना ही यज्ञ, तीर्थ, संयम, तप और चरित्र है। क्षत्रिय धर्मका अर्थ समझमे आ रहा है कि शरणमे आनेवालेकी लाज अवश्य रक्खी जाय। यह शरणमे भी किसके आया है, किसी बनिए-बक्कालकी पनाहमे नहीं, बल्कि एक क्षत्रिय और राजाकी। राजाका चेहरा मारे प्रसन्नताके जपाकुसुमकी तरह लाल सुवर्णसा उद्दीप्त हो उठा और हुंकार मारकर गरज उठा कि 'क्षतात्त्रायत इति क्षत्रिय।' इसे दगा नहीं दूंगा। अपनी जानसे अधिक प्यार करूंगा। शरणमे आयेको धोखा देना ऋषि-हत्यासे भी बढ़कर है। इसकी जान अपनेसे भी अधिक प्यारी मालूम देने लगी है। अपनेको इसपर न्यौछावर कर दूंगा, पर इसे आंच न आने दूंगा। प्यारी आत्मा। घबरा मत। वचन देता हूं, तेरा कान तक गर्म न होने पायगा।

* * * *

व्याध—सरकार। मेरी वस्तु न्यायसे दिलाइये, पेटमे चूहे कूदने लगे हैं, भूखसे शरीर चूर-चूर हो रहा है।

राजा—यह वस्तु तेरी नहीं है, प्रकृति माताने इसे अधिक सताया जानेपर मुझ तक पहुंचाया है, त्राण-शरण वस्तु सब वस्तुओंमे अदेय है ? अतः न दूंगा। इसके अतिरिक्त पैसा, रुपया, मिठाई, मकान गांव, जमीन, शहरसे राज्य और राष्ट्र तक इसके ऊपर न्यौछावर

महाराजा मेघरथ—भाई ! रोटी, दाल, चावल, भुंगड़े, हलवा, सुहाली, मठ्ठा, मिठाई, लड्डू, पेड़े आदि अभी मँगाए देता हू । खाकर तृप्त हो जाओगे। पर इसे न मागो, यह मेरी शरणमें है । यह सारे राज्यसे भी अदेय है ।

व्याध—न्यायशील सरकारकी दुहाई है । मुझे बचपनसे मास ही प्रिय है। इसे न छोड़ सकूगा। मैं आपकी आज्ञा पालन करनेके लिये विवश हूं, पर यह शिकरा मासके अतिरिक्त और कुछ नहीं खाता। सरकार हमसे भूखोंको यही सदाव्रत दे दीजिये। इस दरबारमे न्याय होता है। आपने ही यहा धर्मके काटेमे न्याय और सत्यको तौलकर बताया है। कबूतरको कृपया अर्पण कीजिये, आपकी आत्माको अनन्त पुण्य होगा। देर हो रही है, भूख कलेजा काट रही है। आह ! बड़ी भूख लगी है (यह कहकर एक ओर गिर पड़ता है)।

महाराजा मेघरथ—(कबूतरकी ओर देखकर) अहह ! बेचारा हथेलीपर रक्खे हुए जुबागलकी तरह किस प्रकार काप रहा है। कलेजेको तो देखो, वायुसे प्रेरित ध्वजाकी तरह जल्दी-जल्दी हिल रहा है ।शरीरमे लरजा बार-बार आता है। कातर दृष्टिसे देख रहा है, कितना विह्वल हो उठा है। शायद समझ रहा है कि ससारमे कोई मदद करनेवाला व्यक्ति और निर्भय स्थान है तो यही है। यही ईश्वर परमेश्वर सर्वशक्तिमान् परब्रह्म है। अशरणको निभाना ही भक्तियोग, कर्मयोग, राजयोग और आत्म-योग है। इसीसे राजाके शरणमे बहुत ऊंचेसे आकर पडा है।

हाय। अपनी शरणभूत गोदमेसे निकालकर किस प्रकार अलग कर दूं। कभी नहीं, कभी नहीं, महा अन्याय होगा। बेचारा कपड़ोंमे छिपा जा रहा है। बालककी तरह दामन पकड़े हुए है। ओह। अपनी-अपनी जान सबको कितनी प्रिय है। इस प्रकारकी जानको बचाना ही यज्ञ, तीर्थ, सयम, तप और चरित्र है। क्षत्रिय धर्मका अर्थ समझमे आ रहा है कि शरणमे आनेवालेकी लाज अवश्य रक्खी जाय। यह शरणमे भी किसके आया है, किसी बनिए-बक्कालकी पनाहमे नहीं, बल्कि एक क्षत्रिय और राजाकी। राजाका चेहरा मारे प्रसन्नताके जपाकुसुमकी तरह लाल सुवर्णसा उद्दीप्त हो उठा और हुंकार मारकर गरज उठा कि 'क्षतात्त्रायत इति क्षत्रियः।' इसे दगा नहीं दूंगा। अपनी जानसे अधिक प्यार करूंगा। शरणमे आयेको धोखा देना ऋषि-हत्यासे भी बढ़कर है। इसकी जान अपनेसे भी अधिक प्यारी मालूम देने लगी है। अपनेको इसपर न्यौछावर कर दूंगा, पर इसे आंच न आने दूंगा। प्यारी आत्मा। घबरा मत। वचन देता हूं, तेरा कान तक गर्म न होने पायगा।

* * * *

व्याध—सरकार। मेरी वस्तु न्यायसे दिलाइये, पेटमें चूहे कूदने लगे हैं, भूखसे शरीर चूर-चूर हो रहा है।

राजा—यह वस्तु तेरी नहीं है, प्रकृति माताने इसे अधिक सताया जानेपर मुझ तक पहुंचाया है, त्राण-शरण वस्तु सब वस्तुओंमे अदेय है? अतः न दूंगा। इसके अतिरिक्त पैसा, रुपया, मिठाई, मकान गाव, जमीन, शहरसे राज्य और राष्ट्र तक इसके ऊपर न्यौछावर

है। इनमेंसे तुझे सब कुछ देय है, सब कुछ ले सकता हैं। मगर पुत्रकी भाति अंकमें रहनेवाला कपोतराज सब प्रकारसे अदेय है। अपना शरीर भी इसके बचानेमें तुच्छ समझता हूं, आज इस न्यायालयमे यही न्याय तोला गया है। अपने शेष जीवनके थोड़ेसे भागके लिये उतरती जवानीमें इस छोटेसे पक्षीपर अन्याय न होने दूंगा। इसका भयंकर शाप मुझे और राष्ट्र तकको भस्मसात् कर सकता है। अतः यह असह्य है। अन्याय और फिर गरीबपर पड़ जाय तो नरककी आग कभी न छोड़ेगी। राज और शरीर मेरी अन्तिम देय वस्तु है। पर इससे द्रोह न हो पायेगा।

व्याध—बलिहार जाऊं महाराज मेरे। आपको यह तनिक-सा पक्षी कितना प्यारा हो गया है! अतः अब मैं भी आपका जी अधिक न सताऊंगा, इसके बराबर किसी अन्यका मास मँगा दीजिये। मुझे अब इसके लेनेका हठ न होगा। पर तौलकर कबूतरके बराबर मास दिलवाइये। बस यह बला अभी टल जाय।

राजा—जानें सबकी बराबर हैं, जीव होनेके नाते सब जीवित रहना चाहते है। न मरना किसीको प्रिय है न आपत्तिका झेलना। अतः इतना मास अपने शरीरमेंसे निकाल कर अभी दे सकता हू। शीघ्रता करो, मेरे शरीरका मास स्वीकार है?

व्याध—नीची निगाहसे बोला, राजन्। पापी पेटके लिये सब कुछ भी स्वीकार है।

मेघरथ राजा—कौटुम्बिक पुरुष। जाओ भणे! तराजू और

छुरा कहींसे ले आओ। एक पलड़ेमे कबूतर होगा और दूसरेमे चढ़ाऊंगा काटकर अपनी जघाका मास।

*　*　*　*

महारानी—(महाराजाका हाथ पकड़ कर) नाथ। यह क्या कर रहे हो, आप मृत्युसे लडने जा रहे हैं? मेरी इस युवावस्थापर क्या आपको कुछ भी तरस नहीं आता। एक आपके ऊपर तो मेरा जीवन और रूप-सौन्दर्य निर्धारित है। आपके पीछे हमारा सब कुछ मिट्टीमे मिल जायगा।

महाराजा मेघरथ—मेरा शरीर एक मुट्ठी खाकका पुतला है, मरनेपर सब कुछ मिट्टी है, किसी काम न आयगा। सबको १० दिन आगे-पीछे मौतके घाट अवश्य उतरना है। सबको अपनी-अपनी पडी है। पराई पीरको कोई देखकर भी नहीं लखता। क्षत्रिय वही है जिसके सिरमे पराई पीर समाई हुई हो।

राजपुत्र—पिताजी। इस छोटेसे पक्षीके पीछे अपनी जान क्यों मुफ्तमे गवां रहे हैं? इसे उडा क्यों नहीं देते।

महाराजा मेघराज—पुत्र। राजधर्म दीनका रक्षक तथा न्याय-पारीण होता है। शरण आये हुएकी लाज रखना ही क्षत्रियका पहला कार्य है। यदि इस दर्बारमे न्याय न हुआ तो क्षात्र-धर्म नष्ट हो जायगा।

प्रधान—राजन्। अभी आज्ञा कर दें तो इसपर कानूनी कार्य-वाही की जाय। इसे किसीके साथ बलात्कार करनेका क्या अधिकार है। अभी हथकडिया पहनाकर चालान किये देते हैं।

शिकार खेलनेका अभी मजा आ जाय। मात्र एक बार आपकी जिह्वा हिल जानी चाहिये।

महाराजा मेघरथ—भाई, मुझे न्याय करना है, अन्याय नहीं। अपनी शरीरकी बलि दिये विना न्यायका आसन ऊँचा नहीं उठ सकता। शरीर अनित्य है, सच्चा मित्र कोई नहीं बनता। थोड़ेसे जीवनके लिये इस बाजीको न हारना चाहिये। क्यों न मैं पक्षी पर कुछ उपकार करता चलू।

व्याध—राजन्! क्षुधाकी आग धधक रही है। तनका मास जल्दी दे दें तो किसी तरह पारणा हो।

राजा—वताओ, इस छुरीसे कहाका मास काटकर तराजूमें चढ़ाऊँ?

व्याध—भक्तवत्सल। आपके न्यायकी जय हो। एक व्याध जैसे तुच्छ व्यक्तिपर आपकी कितनी दया और उदारता है मेरे मुखमे जिह्वा इतनी योग्यता नहीं रखती जिससे आपके न्यायकी प्रशंसा की जाय। राजन्! जंघाका मास मुझे अत्यन्त प्रिय है उसे ही काट डालिये।

राजाने जंघाका मास काटकर काटेमे रखकर तोला, मगर तोल पूरा न हुआ। तब दूसरी जघाका मास छीलकर उसमें रखा तब भी वजन पूरा न हुआ। लोगोंको आश्चर्य था कि यह कबूतर है या पारा?

व्याध—महाराज पूरा तोलकर दें?

राजा—भाई, पता नहीं, इतना मास चढा दिया, पर तोल पूरा

ही नहीं होता। अतः कबूतरके बदलेमे स्वयं इस पलड़ेमे बैठ जाता हू। यह कह राजा तराजूके पलड़ेमे जा बैठा।

इतनेमे ठडी हवा चलने लगी, बादलोंसे आकाश घिर आया। पानीकी बून्दोंके साथ-साथ राजाके सिरपर सुगन्धित फूलोंकी भी वर्षा होने लगी। व्याध एक सुन्दर देवके रूपमे आ गया, और बोला कि 'अहिंसा परमधर्मकी जय।' यही महान् आत्मा भगवान शान्तिनाथ सोलहवें तीर्थंकर इसी अहिंसा तपके प्रभावसे हुए।

[२]

वाराणसी निवासी गगाको घरकी बावडी समझकर सदैव उसीमे जलकेलि करने आते हैं। इसकी गलिया तग अवश्य हैं, पर मनुष्योंके हृदय नहीं। वे तो विशाल और उदार प्रमाणुओंके बने हैं। जैसे लोग धनी और सुखी हैं वैसे ही भिक्षुओंको सब कुछ देनेमे श्रद्धालु भी हैं उनके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। जिनमे दानशील मनुष्योंकी पक्तियोंमे उस सुप्रिय और सुप्रिया नामक श्रद्धा-शील दम्पत्तिका नम्बर सबसे पहला है। सुप्रिया सदैव बौद्ध भिक्षु-ओंकी तन, मन, धनसे सेवा करती है। नित्यके नियमानुसार वह एक दिन इसीपतन-मृगदावमे जाकर एक विहारसे दूसरे विहारमे, तथा एक परिवेणसे दूसरे परिवेणमे जाकर भिक्षुओंसे पूछती थी कि—

भन्ते! कौन रोगी है? किसके लिये पथ्यके लानेकी आव-श्यकता है?

उस समय एक भिक्षुने किसी भयंकर रोगको उपशमानेके लिये औषध ली थी, तब उसने सुप्रियासे कहा कि—

उपासिके ! भगिनी । मैंने जुलाब लिया है, इससे मुझे पथ्यकी आवश्यकता है।

अच्छा आर्य ! अवश्य लाया जायगा, कहकर घर आकर नौकरको आज्ञा दी कि—

जाओ भणे ! कहींसे तैयार मास खोज लाओ।

अच्छा आर्ये । कहकर उस पुरुषने वाराणसीके सब बाजारोंमें तलाश किया; मगर तैयार मांस न पा सका। वापस लौटकर अपनी मालकिनसे बोला कि—आर्य्ये ! तैयार मास नहीं है। आज कोई जीव नहीं मारा गया।

सुप्रिया—भिक्षुसे कह आई हूं कि पथ्य बनाकर अवश्य पहुंचाऊंगी; कुछ भी हो, मास नहीं मिला तो क्या हुआ, पर पथ्य तो भिजवाऊँगी ही। यह निश्चयकर पोत्थनिका (मास काटनेका शस्त्र विशेप) लेकर जंघाका मास काट डाला और सोरबा पकवाकर दासीको दे दिया, और कहा कि हन्त ! जे ! इस शोरवेको लेकर अमुक भिक्षुको अमुक विहारमे दे आओ जिससे उसे आरोग्य लाभ हो। यदि मेरे विपयमे पूछे तो कह देना कि बीमार है। यह कह दासीको विदा किया, और आप चादर ओढ़कर चारपाईपर लेट गई।

*   *   *   *

अपनी दुकानका व्यापार सम्बन्धी सब काम निपटा कर संध्या होते-होते सुप्रिय उपासक (बौद्ध) घर आया और सुप्रियाको न पाकर अपनी दासीसे पूछा कि सुप्रिया कहा है ?

दासी—आर्य। इस कोठरीमें लेटी हुई हैं।

उपासक सुप्रिय अपनी प्यारी सुप्रिया उपासिकाके पास आकर बोला कि—

सुप्रिय—कैसे लेटी है ?

सुप्रिया—बीमार हू।

सुप्रिय—तुम्हे क्या बीमारी है ?

सुप्रियाने आद्योपान्त सब वृत्तान्त कह सुनाया।

सुप्रिय—अद्भुत। आश्चर्य। कितनी दयालु तथा श्रद्धालु है यह जिसने जाघका मास देने तकमे भी संकोच न किया। कितनी कठिन अग्नि-परीक्षा है। सत्य है, श्रद्धाशीलके लिये कुछ भी अदेय नहीं है।

* * * *

सुप्रिय—भन्ते। भिक्षुसघ सहित कलका मेरा निमन्त्रण स्वीकार करें।

तब बुद्धने मौन होकर स्वीकृति दे दी। इसके बाद अगले दिन सघ सहित बुद्ध सुप्रियाके घर पधार गये। परन्तु सुप्रियाको घरमे न देखकर पूछा कि सुप्रिया कहा है ?

सुप्रिय—भगवन्। वह बीमार है।

बुद्धजी—उसे बुलाना चाहिये।

सुप्रिय—इतनी अशक्त है तथा बीमारी इतनी भयंकर है कि आ नहीं सकती।

बुद्धजी—कन्धेका सहारा देकर ले आओ।

सुप्रिय उपासक अपनी दानेश्वरी भगवती सुप्रिया प्राण-प्रिय पत्नीको कन्धेका सहारा देकर धीरे-धीरे बाहर ले आया। बुद्धने एक ही बार कृपा दृष्टिसे देखा कि घाव तुरंत अच्छा हो गया। धार्मिक कथा कहकर बुद्ध अपने विहारमे आ गये।

*　　*　　*　　*

आनन्द। भिक्षु संघको एकत्र करो।

आनन्दने क्षण भरमे भिक्षु संघको एकत्र कर दिया।

बुद्ध—भिक्षुओ। सुप्रिया उपासिकासे किसने मास मागा था?

एक भिक्षुक—भगवन्। मैंने मास मागा था।

बुद्ध—क्या लाया गया भिक्षु?

वह—लाया गया तथागत।

बुद्ध—क्या खाया तूने भिक्षु?

वह—हा खाया मैंने।

बुद्ध—कुछ समझमे आया? कुछ पहचानमे आया?

वह—नहीं।

बुद्धने फटकारा और कहा कि बगैर समझे-बूझे ही मास खा लिया? मूर्ख। मोघ पुरुष। तूने मनुष्यका मास खाया?

फटकार कर इतने नियम बनाकर भिक्षुओंको सुनाये—

बुद्ध—भिक्षुओ। मनुष्य इतने श्रद्धालु भी हैं जो अपने शरीर तकका मास भी दे देते हैं।

(१) भिक्षुओ। मनुष्यका मास न खाना चाहिये। जो खाय उसको थुल्लच्चयका प्रायश्चित।

(२) उस समय राजाके हाथी मरते थे, और दुर्भिक्षके कारण लोग हाथीका मास खाते थे। लोग भिक्षुओंको भी हाथीका मास देते थे, और भिक्षु हाथीका मास खाते थे। अतः लोग सुनकर फिर हैरान रह जाते थे कि भिक्षु हाथीका मास खाते-पीते हैं। तब बुद्धने भिक्षुओको फटकार कर कहा कि जो हाथीका मास खाय उसे दुक्कटका दोप लगे (यह बुद्ध भिक्षुका सबसे छोटा प्रायश्चित्त है)।

(३) कुत्तेका मास भी खाते थे भिक्षु।

(४) घोड़ेका मास भी भिक्षु खाते थे।

(५) सापका मास भी बुद्ध भिक्षु खाते थे।

(६) शिकारी द्वारा मारे हुए सिंहका मास भी खाते थे।

(७) बुद्ध भिक्षु बाघका मास भी खाते थे।

(८) बुद्ध भिक्षु चीतेका मास भी खाते थे।

(९) भालूका मास भी खाते थे।

(१०) लकड़बग्घेका मास भी खाते थे।

बुद्धने इन सबके लिये ही मना कर दिया और कहा कि मात्र इनका मास खानेपर दुक्कटका दोप आयेगा।

(विनय पिटक—पृष्ठ २३१ से २३३ तक)

नोट—इस कहानीका मुकाबला करनेसे बुद्धका सर्वज्ञत्व व अहिंसाका स्पष्ट पता लग जाता है। —लेखक।

खद्दरकी साड़ी

आज इस नव पति-पत्नीमें योंही जरासी बातपर मनमुटाव हो गया। बात बहुत मामूली थी। वह थी साड़ीके प्रसगकी बात। पत्नीकी इच्छा थी कि अबसे साड़ी खद्दरकी आवें।

स्वामी—खद्दरकी साड़ी! वह इस गुलाबी और सुकुमार शरीर पर शोभा न देगी। इस चन्द्रवदन पर बनारसी रेशमी साडी अपने भाग्य को सराहेगी। बस तुम्हारे लिये वही मंगवाई गई है। आज कुछ मालूम होता है, तुम गाधी जी का लेक्चर सुन आई हो। इसी से यह खद्दरकी सनक सवार है।

पत्नी—कुछ भी समझो, बात बिल्कुल स्पष्ट है कि मुझे अब मुर्दों से भय लगने लग गया है। ४०००० हजार मृतक कीटाणुओंका पाप रूप भार अब मैं एक पौंड रेशमके रूपमे नहीं सम्हाल सकती। रहा विलायती कपडा, उसमेंसे चर्बीकी इतनी खराब गन्ध आती है कि आप निश्चय समझें, मारे बदबूके दिमाग फटने लगता है। आत्मा तडप उठती है, मुझे अब स्वदेशी मिलोंके कपड़ोंसे घृणा

हो उठी है। वे अब कभी पसंद न आयेंगे। मुझे तो शृंगार और फसन रखनेवाली ललनायें नगी चुडैलोंसे भी बुरी लगती हैं। अब तो अपने देश ही की सादी वेश भूषा और स्वदेशी वस्त्र ही पसद आने लगे हैं। इस फैसनसे मुझे जो धोखा हुआ है, उसका मुझे आन्तरिक दुःख है। पुरुषोंने सुन्दर वस्त्र और भूषणोंका लालच देकर हमको काठकी पुतली बना छोड़ा है। मगर अब उनकी हां मे हा मिलाकर उनके सामने नाच-गान करनेका समय लद गया। अब तो हम स्वावलम्बिनी बनेंगी। अपने सत्य और शीलका पालन स्वय करके अपनी आत्मरक्षा आत्मिक बलसे करेंगी। अब हम पुरुषोंकी सहायता स्वप्नमे भी न चाहेंगी।

पति—(हँस कर) अहा हा। अब तो आप देशभक्तिके गीत आलापने जा रही हो। मगर आपकी प्रतिज्ञायें भीष्म प्रतिज्ञायें नहीं हैं। दश दिनमे बरसाती नालेकी तरह उत्साह रुपयेमें दमडी भर भी न रह पायेगा। मैं भी देखता हू कि यह हठ के दिन तक चल सकेगी।

पत्नी—अच्छा। आपको स्वाभिमानिनी अबलाओंका तिरस्कार करना भी आता है। जाओ, आजसे हमारा आपसे सोशल बायकाट। जहां तक घरमेसे ये विलायती कपड़े और टोडीपन न निकलेगा वहा तक बोलचाल बन्द।

† † † †

१० दिन बीत गये, यह दम्पति आपसमे अब बिल्कुल नहीं बोलते। एक तरफ पुरुषों हठ है, दूसरी तरफ नारी हठ है। क्या छोटी सी बात

थी, जिसपर बोलना तक बन्द हो गया। पर यों सोचो तो बात बहुत बड़ी भी थी। एक ओर पतन था और दूसरी ओर था उत्थान। देखिये, जीत उत्थानकी किस भाति होती है, इस रस्सा कशीने १० दिन तक अपना पूर्ण बल खर्च किया है। पर अपने-अपने पणसे कोई एक इञ्च भी हटनेको तैयार नहीं है। मौनकी शृंखलामें बध जानेसे घरके बहुतसे कामोंके बिगड़नेमे एक दूसरेको कोई पर्वाह न थी। घरमे इस युगल जोडीके सिवा कोई नन्हा वालक भी तो न था जिसकी मार्फत कुछ राजीनामा होनेकी आशा भी होती। मगर इस अवस्थामें मिया ही निढाल हो गये। १० ही दिनमे बुद्धि ठिकाने आ गई दिमागसे साराका सारा टोड़ीपन निकल गया। स्वतन्त्रता रूपी डाक्टरके सामने गुलामी रूपी अनादि रोग टिक न सका।

मियाको अन्तमे यही विचार आया कि क्यों न खद्दरकी ही साडी मॅगवा दी जाय। जिससे यह कजिया मिट जाय। वक्तपर खाना-पीना, ठडाई, चटनी, शर्वत आदि सब कुछ मिल जाता है। मगर मधुरालापके विना ये सब कुछ भी नहीं जॅचते। ऐसी स्वतन्त्रता देवीकी अवज्ञा करना पाच हत्याओसे अधिक पाप है। हाथके कते-बुने वस्त्र हमे क्यों बुरे लगते है? अन्य देशीय वस्तुओंने हमें कितना पतित कर दिया है। आखिर देवीजी यही तो कहती है कि हम भारतमे जन्मे है तो विलायतमे मरने थोड़े ही जायगे।

जलवायु तो हो भारतका और कफन आवे विलायतसे। कितने मर्मकी वात है। अब तो मै भी स्वदेशाभिमानी बनूगा। साडी

आते ही देवीजी तुरन्त बोल उठेंगी। अगले दिन सवेरे ही खद्दर भण्डारसे घरमे कई रगकी साडियां आ गई, मगर गृह-कोकिला फिर भी चुप थीं। हाय! अब भी वह मनोहर केकी-कूकको इन कानोको सुननेका सौभाग्य न मिला। वसुदेव हाथ मलते रह गये और विचारने लगे कि शायद अब पूर्ण प्रायश्चित्तके विना सुलह होना कठिन है।

\+ + + +

आज रविवार है, दफ्तर बन्द रहेंगे, क्योंकि छुट्टी है, नलपर जाकर सई सवेरे वह स्नान कर आए हैं और आज घरके द्वारपर होली जल रही है। एक तार भी घरमे न छोडा। सब अग्नि देवके उदारार्पण कर दिया। नये सिरेसे सब क्षौम वस्त्र धारण किये। चौकेमे आकर ये नये बहुरुपिया साहब बडे गौरवके साथ विराज गये। देवीजीने स्वामी-जीको दृढ मौनमे उत्तमोत्तम भोजन परोस दिये। भोजनसे निवृत्त होकर स्वामी शयनागारमे चले गये। देवीजीने तिपाईपर झझरी गिलास पहले धरसे ही रक्खा था। कोई काम ऐसा न छोडा कि जिसमे किसीको किसीकी शिकायत करनेका अवसर आ सके और खास-कर पत्नीकी तो इसमे बडी भारी जिम्मेदारी होती है।

देवीजीने चौकेके सब वर्तन मलकर सदाकी भाति साफ किये। उन्हें अलमारीमे रखकर सफेद वस्त्रसे सबको ढाप दिया, जिससे मक्खी या किसी अन्य जन्तुको स्पर्श करके विष छोडनेका अवसर न आवे। सन्दूकमेसे सीने-पिरोनेका सामान लेकर क़ालीनपर सदाकी भाति क़सीदा काढ़ने बैठ गई।

दिनके तीन बजे होंगे, बाबूजी लालटेन जलाकर हाथमें लटकाये हुए उसी कमरेमे आकर पुस्तकालयकी सब पुस्तकोंको प्रकाशमें इधर-उधर देखने लगे। परन्तु स्वार्थ पूर्ण न हुआ देखकर मेजके नीचे रद्दीकी टोकरीके कागजोंको रोशनीके पास ला-लाकर उन्हे उथलने-पुथलने लगे। बहुत देरके बाद यह हाल देखकर देवीजी जरा हँसकर बोलीं कि स्वामिन! किसकी खोज है? पतिदेव तुरन्त मुसकुरा कर कह उठे कि श्रीमतीजी! जिसकी ढूंढ़ भाल मुझे थी वह अमूल्य वस्तु मेरे अहोभाग्यसे पुनः मिल गई।

पत्नी—वह तो आपकी सेवामें सदा ही उपस्थित थी। पर आपने उसे चर्बी और कीड़ोंकी आंतोसे ढापकर अपवित्र या जड़ बनाकर उसे विलासिताके कुचक्रमें फँसाकर सदाके लिये दुर्गतिके गर्तमे सड़ाकर रखना चाहा था। पर हम अबलाओंके पास उपेक्षाके अतिरिक्त और क्या शस्त्र पुरुषोंने रख छोड़ा है। यदि इस मौनको आप सदाके लिये तुड़वाना चाहते हों तो यह बहुरूपियापन न रखना।

पतिने नतमस्तक होकर कहा कि चाहे नौकरीसे कल ही जवाब क्यो न मिल जाय परन्तु अब स्वदेशी वस्त्र और आर्य वेश भूषा कभी न छोड़ूंगा। देवीने उठकर पतिके पैरोंमे अपना मस्तक टेक दिया कि दूसरे ही क्षण एक ब्रह्म हो गये, और द्वितीयाका उनमें अभाव था।

होटल

दीनाकी विधवा विमाता उसे अपने पुत्रसे भी अधिक मानती है। इसकी एक चिर-रोगिनी पत्नी है, दो-तीन बच्चे हैं। बस यह कुटुम्ब भी छोटासा है। पर सबसे बड़ी बात यह है कि दीनाके सब कहनेमें चलते हैं। कोई इससे बाहर नहीं जा सकता। कुटुम्बके ये सब आदमी मात्र एक आटेकी दूकानसे पलते हैं। इनका भाग्य आटेकी मशीनके सहारे चलता है। यह मशीन इसके चाचाकी है। चाचा की दीनापर इतनी ही कृपा-दृष्टि है कि दीनासे सिर्फ पिसाई चार्ज नहीं की जाती। चाचा जैसे महापुरुषोंकी अनाथ दीनापर यह दृष्टि क्या कुछ कम अच्छी है—इतनी उदारता तो इसे डूबतेको तिनके का-सा आश्रय है। आखिर दीना बेचारा गरीब ही तो है। गरीब पर सबको थोड़ा बहुत तरस इसलिए आ जाता है कि इसकी हायसे सब कांप उठते हैं। चाचाजी वैसे तो अलग रहते हैं। यहीं कहीं जैन-मन्दिरवाली गलीमें ही घर है, पर दूकान अच्छे मौकेपर है। ठीक सब्जीमंडीमें है। संध्या तक खासी पिसाई आ जाती है। मैंदे

फरोशोंमे इनका नाम पहले लेते हैं। रूप-रंगके तो जैसे हैं वैसे ही हैं, पर भाग्यके सिकंदर हैं। इस समय चाहें तो मिट्टीमे हाथ डालकर सोना ले सकते है। पर इस मजिल तक अभी इन्हे पहुंचनेकी आशा न होती थी। घरमे मिया बीवीके अतिरिक्त और तो कोई है नहीं। तब किसके लिए इतने पापड बेले जायॅ, यही समझ मन मारके रह जाते थे। इसीसे यह थोड़ीसी ममता दीना पर रख रहे है। बाप तो इस बेचारेको बचपनमे ही छोडकर चल बसे थे।

* * * *

दीनाकी दूकान इसलिए चल निकली है कि जार्जपचम गद्दी पर बैठने इग्लैंडसे भारत आ रहे है। इसीसे जल्सेमें बडी चहल पहल है। लोगोंके विचारसे एक करोड़ आदमी एकत्र हुए है। कुछ कुछ बात सच भी निकली। बारादरीमे भी उन दिनोंमें बहुत साधु विराजमान थे। दिल्लीमे पहले ऐसी भीड़ कभी नहीं देखी गई। कन्धे से कन्धा मिलता था। यह दर्बार-क्रिया होनेके बाद उस भूमिके भाग बड़े गये। और उस जगहका नाम किंग्सवे Kings way पड गया। उस भूमिके साथ देहली मात्रके भाग खुल पड़े थे जौहरियोंकी उन दिनो पाचों अंगुलिया घीमें थीं। बजाजोंने अपना भाग सराहा था। टोपीवालोंने धुएके मालको असली के दामों बेचा। घीवालोंकी आजीविका क्या कुछ कम सराहनीय थी, रुपयेका घी पाच छटाक तक बेचा था। दूधवालोंका कहना है कि ऐसा जमाना अब देखनेको भी न मिलेगा, हमने पनियाला दूध ॥) सेर अपने हाथों बेचा है। मोदियोंके तो पोबारा थे।

छक्कनलाल मोदी तो इसीमें वन गये थे। दालवाले पूरे मालदार कहला गये। हमारे दीनाके भाग्यका पुराना जक इसी दर्बारके कृपा कटाक्षसे उतर गया। पैसा खूब कमाया था। पर कम तोलना और नया-पुराना एक करनेका काम इससे न हुआ। इन दो अपराधोंको किसी गुप्त शक्तिने दीनाके पवित्र अन्तस्तलमें स्थान न जमने दिया। अन्तमें इस सत्य धर्मने दीनाका पलड़ा वर कर दिया। आखिर परिश्रम भी तो कोई वस्तु है। धनके साथ वाजारमें साख भी पहलेसे अधिक जम गई। लोग यों ही रुपया इसके घरमें सफीदोंके लड्डुवेरकी तरह फेंक जाते मानो दीना रुपयों-का चौकीदार है। चाचाजीसे अधिक विश्वास अव दीनाका है। पर इसके मनसमुद्रमें इतना कुछ होनेपर भी घमण्डका ज्वारभाटा कभी नहीं आ पाता था। प्रकृतिने दीनाको दीनप्रकृति वख्शी थी। अमीर-कवीरोंका सा खाऊ-उड़ाऊ न था। दीनानाथ इस नये नकोर प्रवाहके तीखे झोंके खाकर भी भोली और सरल प्रकृतिका स्वामी वना हुआ था। इसीसे पेटमें पाप न रखता था और सवको समान भावसे देखनेका अभ्यास इसीसे वना रहा था। सामायिक सवर यथा समय करनेमें कभी न चूकता। मूलचन्द मुसद्दीलालकी धर्म-शालामें अकसर कभी-कभी आये गये सच्चे साधुओंके दर्शन करने दोनों वक्त जाता था। मुनियोंको आहारपानीकी दलाली करानेका इसके अतिरिक्त और किसीको शौक न था। जिसपर भाग्य ऐसा लगा कि सब्जीमंडीमें इज्जत कमाता और मुनियोंके सम्पर्कमें धर्म कमाता। अव आपही कहिये इससे वढ़कर भी कोई भाग्यशाली हो

सकता है। धन और धर्म कमानेवाला ही आदर्श कमाऊ समझा जाता है। अब तो दीनाके पीछे कुछ मनचले दिल्लीके शौकीन मित्र इस तरह इसे घेरे रहते जैसे गुड़पर मक्खी ! दीना ही था जो पगड़ी रखकर घी खाना जानता था। यह आगन्तुकोंकी सेवाको बादाम-की ठंढक तथा पान-इलायचीसे आगे आधा इञ्च भी नहीं बढ़ने देता था। पक्का बनिया था। समझे हुए था कि विलासिताके खड्डेमें वाजिदअली शाह जैसोंका पता न चला तो यहां २-४ हजार रुपल्लिया किस बागकी मूलिया हैं। इसीसे अपनी सादगीसे कभी बाहर न होता था, और मित्रोंके सब्ज़बाग दिखलाने पर भी यह बंबीमे सांपकी तरह हमेशा सीधा रहता था और याद रखता था कि ये अम्माजीकी अक्षरशः बातें अनुभूत और सत्य सिद्ध हैं। वह गोपीचन्दकी तरह सच्ची मातृ भक्ति करता था। इसीसे मित्रोंका इसपर जोर न चलता था।

* * * *

छुट्टनलाल—क्यों भाई दीनानाथ, आज हड़ताल है। गाधीजी गिरफ्तार हो गये हैं। मगर तुम फिर भी दुकानके फट्टेसे इस तरह चिमटे बैठे हो जैसे छतमे चमगीदड। आज तो पूर्ण हडतालकी सम्भावना है। अतः चलकर कहीं जी बहलायें। हमारी इच्छा तो कुतुब चलनेकी है।

दीना—भाई, अब चलो तो निगम्बोध तक तो चल सकता हू आगे नहीं।

मिट्ठनलाल—निगम्बोधमे क्या है ?

दीना—वहा यमुनाका वहता सौन्दर्य्य देखनेको मिलेगा, और जलते हुए मुर्दोंको देखकर मिलेगी वैराग्यमयी शिक्षा—बस नहा धोकर चले आयेंगे। अधिक फुर्सत नहीं है। क्योंकि महावीर भवनमें दो मारवाड़ी साधु आये हुए हैं। उनका व्याख्यान सुनेंगे, और वे व्याख्यानके वाद ही वहासे चलकर यहां आ जायेंगे। तब भला फिर उन्हें आहारके लिये मेरे सिवाय घर कौन बतायेगा? यहाके जैनोंमे तो इतना भी राम नहीं है। फिर उनके अंगूठेमे कुछ जख्म पड़ गया है। दो बजे नन्दू जर्राहके यहां ले जाऊंगा। माफ करें, मुझे कुतुब जानेकी फुर्सत नहीं।

मिट्ठनलाल—साधु होजा साधु, अभी तो सिरपर सबके सब काले हैं। अभीसे वैराग्यकी बातें बघारने लग गया। लालाको फुर्सत ही नहीं होती। हम तो हरेभरे दिनोंके उत्साहसे भरपूर होकर आये थे; पर आपने दोस्तीकी कुछ भी क़दर न की। हमारे मन पर इस तरह ढेला पत्थर बरसाने लगे। अच्छा, रातको तो फुर्सत होगी। आज रातको तो हम तुझे जरूर एक नवीन आश्रममे ले जाकर ही मानेंगे।

दीना—दिल्लीके गली मोहल्ले कूचे सब मेरे गाहे पड़े हैं। मुझे दिल्लीमे कुछ भी नवीनता नहीं जंचती। आज अम्माजीको बुखार आ गया है। शायद ही रातको फुर्सत मिले।

जग्गीमल—यार तुम भी खूब हो। हमेशा घरकी मोरीके कीड़े ही रहते हो। कभी तफरीहके लिये भी चला करो। जिन्दगीका मजा लेना कोई हमसे सीख ले।

दीना—भाई। मुझे तो माताजीकी सेवामें ही आनन्द है। बच्चोंका पालन इस आटेकी दूकानसे हो जाता है और आत्म शांति सन्तोंके दर्शनसे मिल जाती है। मुझे इससे अधिक जिन्दगीका कुछ भी. मजा न चाहिये। थोड़ेसे सर्राफीके अक्षरोंको छोडकर मुझमे इल्मी लियाकत भी नहीं है। मुझे मालूम है, शायद तुम सन्ध्यामें महावीर लाइब्रेरी ले चलोगे। पर मैं पुस्तकें पढ़ना भी नहीं जानता। रहा सिनेमा-थियेटर, मैं इतना बड़ा हो गया, कभी उन्हे देखने गया ही नहीं।

भोंदूमल—आज तुम्हें वहा ले जायेंगे जहा सातों पीढ़ीके पित्रोंकी तृप्ति होती है।

दीना—भाई, हमने तो पितृ तर्पण और श्राद्ध करना सब छोड़ दिया है। अब तो हमारी अम्माजीको भी इसका वहम तक नहीं है। जीतोंको सताकर मरे हुएके नामपर श्राद्ध करना भी कुछ भल-मनसी है? भाई मैं जीते जी पित्रालय कभी न जाऊंगा। मेरा पित्रालय है मेरी पूज्या माता, जिनकी भक्ति करना मेरा कर्त्तव्य है।

हाडाराम—अच्छा, सत्संग आश्रममें तो चलोगे?

दीना—मुझे सन्तोंके समागमके अतिरिक्त और किसीका भी सत्सग पसन्द नहीं। सब सुल्फेबाज मूछकटे पैसेके यार देखे! नाम सतोंका सा, लिवास सन्तोंका सा, पर पेलते हैं इमलीके पत्ते-पर डंड। दूर पटको ऐसे सन्तोंको। अगर शान्ति और धर्म-शिक्षाका कोई स्थान हो तो चला चलूंगा। पर आपके और और दुर्व्यसनके अड्डोंपर मैं कभी नहीं फटकानेका! अगर ऐसी वैसी

जगह हुई तो मैं फिर कभी तुम्हारा विश्वास न करूंगा। कहनेको तो आप मेरे मित्र हैं, पर मैं तो आपको अब उजागरमल भी समझने लगा हूं।

भोंदूमल—अच्छा दीना अब तो पूरे ब्रह्मज्ञानी बन गये हो। हम भी आज ब्रह्मशालामें ही ले जाकर छोड़ेंगे। जहां आपको पूर्ण सहजानन्दकी चसक लग जाय। फिर तो उस आश्रममें हमें आप ही खींचकर ले जाया करो तो करामात नहीं।

— — — —

कांचके समान चमचमाती तारकोलकी सड़क, बिजलीकी अनगिनत दीपावलियोंसे जगमगाती महानगरीको रातमें देखकर परदेशी मुसाफिर अपना आपा खो देते हैं। सब्जीमण्डीके छकड़ छैल छबीले युवक मांग पट्टीसे लैस होकर, चूड़ीदार चुस्त पायजामा कसे, जर्कबर्क महीन मलमलकी पोशाक डाटे हाथमें लपलपाता बेंत लिये पान कचरते, सिगरेटका धुआं उड़ाते, इतराते, आपसमें ठट्ठा मसखरी करते, बाजारकी सान्ध्यशोभा निहारते, चावड़ी बाजारके हरे भरे कोठोंपर आंखें सेंकते, अपना यौवन धन्य और जीवन सफल करते, तमाम दिल्लीकी परिक्रमा देते हुए विक्टोरिया होटलकी मनोहर अट्टालिकाके ऊंचे भवनमें जा डटे। पर गरीब दीनाकी तो वही खादीकी पोशाक है। सफेद अहमदाबादी देशी मिलकी लाल किनारीकी धोती, खद्दरका मोफली बांहोंका कुरता, सिरपर लखनवी पल्लेके अतिरिक्त कुछ नहीं है। यही इनकी नित्यकी वेश भूषा है। यह आज तक सादगी देवीका उपासक रहा है। फैशन परस्तोंकी

दीना—भाई ! मुझे तो माताजीकी सेवामें ही आनन्द है। बच्चोंका पालन इस आटेकी दूकानसे हो जाता है और आत्म शांति सन्तोंके दर्शनसे मिल जाती है। मुझे इससे अधिक जिन्दगीका कुछ भी मजा न चाहिये। थोड़ेसे सर्राफीके अक्षरोंको छोडकर मुझमे इल्मी लियाकत भी नहीं है। मुझे मालूम है, शायद तुम सन्ध्यामें महावीर लाइब्रेरी ले चलोगे। पर मैं पुस्तकें पढ़ना भी नहीं जानता। रहा सिनेमा-थियेटर, मैं इतना बड़ा हो गया, कभी उन्हे देखने गया ही नहीं।

भोंदूमल—आज तुम्हें वहा ले जायेगे जहा सातों पीढीके पित्रोंकी तृप्ति होती है।

दीना—भाई, हमने तो पितृ तर्पण और श्राद्ध करना सब छोड़ दिया है। अब तो हमारी अम्माजीको भी इसका वहम तक नहीं है। जीतोंको सताकर मरे हुएके नामपर श्राद्ध करना भी कुछ भल-मनसी है? भाई मैं जीते जी पित्रालय कभी न जाऊंगा। मेरा पित्रालय है मेरी पूज्या माता, जिनकी भक्ति करना मेरा कर्त्तव्य है।

हाडाराम—अच्छा, सत्सग आश्रममे तो चलोगे?

दीना—मुझे सन्तोंके समागमके अतिरिक्त और किसीका भी सत्सग पसन्द नहीं। सब सुल्फेबाज मूछकटे पैसेके यार देखे। नाम सतोंका सा, लिबास सन्तोंका सा, पर पेलते है इमलीके पत्ते-पर डड। दूर पटको ऐसे सन्तोंको। अगर शान्ति और धर्म-शिक्षाका कोई स्थान हो तो चला चलूगा। पर आपके और और दुर्व्यसनके अड्डोपर मैं कभी नहीं फटकानेका। अगर ऐसी वैसी

जगह हुई तो मैं फिर कभी तुम्हारा विश्वास न करूंगा। कहनेको तो आप मेरे मित्र हैं, पर मैं तो आपको अब उजागरमल भी समझने लगा हूं।

भोंदूमल—अच्छा दीना अब तो पूरे ब्रह्मज्ञानी बन गये हो। हम भी आज ब्रह्मशालामें ही ले जाकर छोड़ेंगे। जहां आपको पूर्ण सहज्ञानन्दकी चसक लग जाय। फिर तो उस आश्रममें हमें आप ही खींचकर ले जाया करो तो करामात नहीं।

* * * *

काचके समान चमचमाती तारकोलकी सड़क, बिजलीकी अनगिनत दीपावलियोंसे जगमगाती महानगरीको रातमें देखकर परदेशी मुसाफिर अपना आपा खो देते हैं। सब्जीमंडीके छक्कड़ छैल छबीले युवक मांग पट्टीसे लैस होकर, चूडीदार चुस्त पायजामा कसे, जर्कवर्क महीन मलमलकी पोशाक डाटे हाथमें लपलपाता बेंत लिये पान कचरते, सिगरेटका धुआं उड़ाते, इतराते, आपसमें ठट्टा मसखरी करते, बाजारकी सान्ध्यशोभा निहारते, चावडी बाजारके हरे भरे कोठोंपर आंखें सेंकते, अपना यौवन धन्य और जीवन सफल करते, तमाम दिल्लीकी परिक्रमा देते हुए विक्टोरिया होटलकी मनोहर अट्टालिकाके ऊंचे भवनमें जा डटे। पर गरीब दीनाकी तो वही खादीकी पोशाक है। सफेद अहमदाबादी देशी मिलकी लाल किनारीकी धोती, खद्दरका मोकली बांहोंका कुरता, सिरपर लखनवी पल्लेके अतिरिक्त कुछ नहीं है। यही इसकी नित्यकी वेश-भूषा है। यह आज तक सादगी देवीका उपासक रहा है। फैशन परस्तोंकी

फ़हरिस्तमें अब तक इसने नाम ही नहीं लिखाया है। जवानीका नशा दिल्ली भरमें मानो इसीने रोका है। दुर्व्यसनके प्रवाहमें मानो सम्हल कर तैरकर पार हो रहा है। पर आज इन सिड़ी खिलाड़ियोंके झीले झांसोंमे आकर यह भी एक कुर्सीपर बैठा है। कमरेकी शोभा निहार रहा है। बातकी बातमें छः तश्तरियां लाकर आ गईं। मित्रोंके हाथ अंग्रेजी ढंगके बने खानेपर पड़ने लगे; पर दीना उसी तरह हाथ खींचकर भींतकी मूरतकी तरह बैठा रहा। मित्रगण मीठी हँसी हँसकर बोले कि क्या ऊंघ रहे हो दीना, जलपान क्यों नहीं करते !

दीना—आप खाइयेगा, मैं इस वक्त न खाऊंगा।

भोंदूमल—यार, तुम्हारे बिना हम भी क्या खाते अच्छे लगेंगे।

दीना—क्या इनमे कोई उत्तम खाद्य वस्तु है जिसके लिये मन भटकता हो, ऐसी तो कोई बात नहीं मालूम देती। ये सब चीजें रोज घर खाते पीते है। फिर न जाने आप किस चीजपर रीझे पड़े हो ?

भोंदूमल—दीना, संसार भरमे हमारी जातिके लिये यह वस्तु अलभ्य है, घरमे नहीं मिल सकती। तभी तो यहां तक आये हैं।

दीना—मुझे नुसखा बतायें, मैं अपने घरपर बनानेका प्रयत्न करूंगा।

भोंदूमल—भाई, यह स्वर्गीय वस्तु घरपर नहीं बन सकती। सबमे मोलकी महँगी वस्तु है। जरा जबानपर रखियेगा तब ही तो स्वाद परख सकोगे।

दीनानाथ—भाई सच कहता हू, मुझे बचपनसे ही अम्मांजीने रातमे खानेका त्याग करा दिया था। पानी तक भी रातको नहीं पीता। पर हां सब सामग्री लिखा दो, अम्माजीसे इसी तरहका खाना अवश्य बनवा दूंगा। मगर मित्रोंमेसे किसीकी हिम्मत नुस्खा बतानेकी नहीं पडती थी। इतनेमे होटलवालेने आकर कहा कि लालाजी! आपकी अम्माजीकी क्या मजाल है जो इस खानेकी कापी कर सके। यह चीज खर्गोशके मासकी बनती है, समझे। बस फिर क्या था कलई खुल गई, आस्मानका थूका मुँहपर आ गिरा। ताम्बेपरसे पारा अलग हो गया। दीना जमीनपर थूककर उठ खड़ा हुआ और गुस्सेसे लाल होकर बोला, मुझे बहकाकर मेरा धर्म बिगाडने यहा लाये थे। बदमाशो! अपना तो दिवाला निकाला मुझ गरीबका भी सर्वनाश करनेके लिये तुल गये हो, नीच कुत्तो! आजसे कान पकड़ता हू कि तुम्हारा नीच संग कभी न करूंगा। आज लाज रह गई। रात्रि भोजनकी प्रतिज्ञा थी। नहीं तो आज मुझसे जैनत्वका नाश हो गया होता। धन्य अम्माजी! एक मामूलीसी प्रतिज्ञा दिलाकर आज तुमने मुझे भयकर पाप करनेसे रोका है, धन्य वीर परमात्मन! तेरे ज्ञान, और तेरे बताये हुए साधारण नियम धर्मको बार-बार धन्य!

फ़हरिस्तमें अब तक इसने नाम ही नहीं लिखाया है। जवानीका नशा दिल्ली भरमें मानो इसीने रोका है। दुर्व्यसनके प्रवाहमें मानो सम्हल कर तैरकर पार हो रहा है। पर आज इन सिड़ी खिलाड़ियोंके झीले झासोंमे आकर यह भी एक कुर्सीपर बैठा है। कमरेकी शोभा निहार रहा है। बातकी बातमें छः तश्तरिया लगकर आ गईं। मित्रोंके हाथ अंग्रेजी ढंगके बने खानेपर पड़ने लगे, पर दीना उसी तरह हाथ खींचकर भींतकी मूरतकी तरह बैठा रहा। मित्रगण मीठी हँसी हँसकर बोले कि क्या ऊंघ रहे हो दीना, जलपान क्यों नहीं करते।

दीना—आप खाइयेगा, मैं इस वक्त न खाऊंगा।

भोंदूमल—यार, तुम्हारे विना हम भी क्या खाते अच्छे लगेंगे।

दीना—क्या इनमे कोई उत्तम खाद्य वस्तु है जिसके लिये मन भटकता हो, ऐसी तो कोई बात नहीं मालूम देती। ये सब चीजें रोज घर खाते पीते हैं। फिर न जाने आप किस चीजपर रीझे पड़े हो?

भोंदूमल—दीना, संसार भरमे हमारी जातिके लिये यह वस्तु अलभ्य है; घरमें नहीं मिल सकती। तभी तो यहा तक आये हैं।

दीना—मुझे नुसखा बतायें, मैं अपने घरपर बनानेका प्रयत्न करूंगा।

भोंदूमल—भाई, यह स्वर्गीय वस्तु घरपर नहीं बन सकती। सबमें मोलकी महँगी वस्तु है। जरा जबानपर रखियेगा तब ही तो स्वाद परख सकोगे।

दीनानाथ—भाई सच कहता हूं, मुझे बचपनसे ही अम्माजीने रातमें खानेका त्याग करा दिया था। पानी तक भी रातको नहीं पीता। पर हां सब सामग्री लिखा दो, अम्माजीसे इसी तरहका खाना अवश्य बनवा दूंगा। मगर मित्रोंमेसे किसीकी हिम्मत नुस्खा बतानेकी नहीं पड़ती थी। इतनेमे होटलवालेने आकर कहा कि लालाजी! आपकी अम्माजीकी क्या मजाल है जो इस खानेकी कापी कर सकें। यह चीज खर्गोशके मासकी बनती है, समझे। बस फिर क्या था कलई खुल गई, आस्मानका थूका मुँहपर आ गिरा। ताम्बेपरसे पारा अलग हो गया। दीना जमीनपर थूककर उठ खड़ा हुआ और गुस्सेसे लाल होकर बोला, मुझे बहकाकर मेरा धर्म बिगाडने यहा लाये थे। बदमाशो! अपना तो दिवाला निकाला मुझ गरीबका भी सर्वनाश करनेके लिये तुल गये हो, नीच कुत्तो! आजसे कान पकड़ता हू कि तुम्हारा नीच सग कभी न करूंगा। आज लाज रह गई। रात्रि भोजनकी प्रतिज्ञा थी। नहीं तो आज मुझसे जैनत्वका नाश हो गया होता। धन्य अम्माजी! एक मामूलीसी प्रतिज्ञा दिलाकर आज तुमने मुझे भयकर पाप करनेसे रोका है, धन्य वीर परमात्मन! तेरे ज्ञान, और तेरे बताये हुए साधारण नियम धर्मको बार-बार धन्य।

कुत्तेसे भी बदतर

उमर खय्यामने न जाने किस मद्यका कथन किया था परन्तु शान्तिकुमार उसका आशय वही रोहित वस्तु ही समझ पाया था जिसके रगमे अग्नि वर्षा होती है, जिसके जलमेंसे ज्वाला-की लपटें निकलती हैं, जिसका प्रकाश पुरुषको मदान्ध कर देता है। वह कहता था कि जब उमर खय्याम जैसे विद्वानने मदिराकी प्रशसा की है तब मैं नहीं समझता कि टिम्परन्स सोसाइटीके मूर्ख क्यों क्रन्दन किया करते हैं, शायद इन्हे बुद्धिमत्ता मानो छूतक न गई हो। जो मनुष्य मदिरा पीकर सच्चिदानन्दमय जीवनकी सुषुप्ति नहीं देख सकता उसको चाहिये कि वह मृत्युगत हो जाय या आत्म-घात कर ले।

क्यों माताजी! महर्षि लोक जो सोमरसका पान किया करते थे क्या वे मूर्ख थे?

तब माता तग आकर कहती कि पुत्र। तुम विज्ञानवेत्ता हो, मैं तुम्हारे साथ चर्चा नहीं कर सकती, परन्तु स्मरण रहे कि एक दिन

तुम्हें अवश्य रोना होगा। मेरी वातको पल्ले,वाव रक्खो, तुम आंसू वहाओगे, शान्ति। और पश्चात्ताप मुफ्तमें करोगे।

शान्तिकुमार कहता मात'। आप एक अच्छी व्याख्यानदायिका हो, कहीं कांग्रेसमें तो आप नहीं प्रविष्ट हो गईं, अच्छा शीघ्रता करो दफ्तर जानेमें देरी हो रही है, आलू वनानेमें तो माताजी आपने वडी चमत्कृति दिखा दी है, ये वड़े स्वादु हो रहे हैं।

* * * *

माता सोचती थी कि कैसा हठी वालक है, सब उनका-सा स्वभाव है, वे जिस वातपर डट जाते थे, टलने ही न थे और वे भी आलूप्रिय थे, उनका भी चर्चा करनेका ही स्वभाव था, वे पक्के हठी थे।

माताका नाम रामावाई था और वह थी आदर्श विधवा। नखसे शिखातक श्वेत वस्त्र पहनती थी। मानो कोई श्वेतवस्त्रदेवीका अवतार है। वर्षोंके ब्रह्मचर्य रूपी असिधारा व्रतने नेत्रोंमें एक विलक्षण तेज पदा कर दिया था, मुख-मण्डलपर कान्तिकी अमोघ वर्षा थी। वह वनाव-शृङ्गार न करती थी परन्तु वनाव-शृङ्गार करनेवाली कालेजकी कितनी ही वालिकाओंसे अत्यन्त सुन्दर थी। इस अरुण और श्वेत सागरमें आंखोंकी सुन्दर नौकायें तैरती थीं और तटस्थ पान्थजन लोभकी तृष्णा तरंगमें हाथ मलते-मलते लय हो जाते थे।

शान्तिकुमार इसका सर्वस्व मात्र था, वह दफ्तर चला जाता तो वह चरखा कातती करती और अध्यात्म पद गाती रहती, और जब वह लौटकर आता तो उसे प्यारसे नई-नई सात्विक वस्तुएं खिलाती,

और जब रात्रिके समय कोई इष्ट-मित्र उसे किसी गलीकी गन्दी नालीसे घसीटता हुआ ले आता तो माताकी आखोंसे छम-छम अश्रुधारा बरसने लगती, वह सोचती थी कि क्या इसे कभी भी समझ न आयगी।

एक दिन शान्तिकुमार शराबकी मूर्च्छासे मुक्त होकर देखता है कि मस्तकपर पट्टी बंधी है, शय्याके सरहानेकी ओर माता खड़ी है सूरजकी एक नन्हीं-सी किरण उसके चमकीले काले बालोंसे खेल रही है, और माताकी आखोंसे अश्रुधारा निकल रही है।

शान्तिकुमारने पूछा माता रोती क्यों हो ? माताने शीघ्रतासे आसू पोछकर कहा—रोती कहा हूं।

शान्तिसे सब नागरिक घृणा करते थे, इसका कोई मित्र न था मात्र इनेगिने स्वार्थियोंके इसका कोई अपना न था, ले-देकर बस माता ही इसका सर्वस्व थी। इसकी दौड़-धूप मातातक थी, इसे यह मातृभक्तिसे सच्चा प्यार करता था, कितने ही बार संसारसे तंग आकर वह माताकी गोदमें बैठकर रोने लगता था तथा कई बार इसने मातासे कहा था कि मा यदि तुम्हें कभी किसीने दुखी किया तो मैं उसका सर काट दूंगा। कितनी ही वार उसने अपने साथी क्लर्कोंसे कहा था कि मा ! अरे माता जैसी सात्विक और उत्तम संसारमे अन्य क्या है आज इसी माताको रोते देखकर शान्तिकुमार उद्विग्न हो उठा, बोला—माता सत्य-सत्य कह दो। रोती क्यों हो ?

माताने धीमे स्वरमें कहा रोती हू। शान्तिकुमार ! इसलिये कि तुम शराब पीना नहीं छोड़ते। शान्तिकुमार हंसने लगा—

उसके उपहाससे मकान गूंज उठा, बस इसीलिये, यह तो नितान्त निरर्थक-सी बात है मा! मत रोओ—ऐसे धर्मोंमें मत फँसो, यह कहता हुआ वह उठकर स्नानागारमें चला गया, माता विस्मित होकर पुतलीकी तरह खड़ी ही रह गई।

* * *

नगरमें अब प्रति दिन मनुष्य अपनेको दमन-नीतिकी अग्निमें बलि देने लगे हैं। लघुवयस्क बालक शराबोंकी दुकानोंका पहरा देते हुए पकड़े जाते हैं परन्तु फिर भी न जाने कहांसे नवीन स्वयसेवक आ जाते हैं।

शान्तिकुमारने कहा मातः कहा पधारोगी? माताने द्वारमे खड़े-खड़े कहा कि मैं जाऊंगी शराबियोंकी दुकानोंपर। जैसे बने लोगोंको शराब खरीदनेसे मना करूंगी। शान्तिकुमारने रोदन-पूर्वक कम्पित स्वरसे कहा—शराबकी दुकानपर? पता नहीं कितने स्वयसेवक वन्दी-गृहमे जा चुके हैं। माता बोली तब क्या बात है मैं भी बन्दिनी हो जाऊंगी। वह बालकोंकी भांति हठ वाव मार्ग रोककर खड़ा हो गया। बोला माता मैं तुम्हें न जाने दूंगा।

रामाबाईने कड़ककर कहा कि आगेसे हट जा! मैं तुम्हारी माता हूं तुम मेरे बाप नहीं हो। यों कहकर वह उसे बलात्कार मार्गसे हटाकर बाहर चली गई। शान्तिकुमारने क्रोध-पूर्वक कहा कि जाओ मेरा क्या बिगाड़ सकोगी, शायद तुम सब दुकानोंपर तो पिकेटिंग न लगाओगी। जहांपर तुम न होगी वहीं मैं जाऊंगा।

* * * *

और जब रात्रिके समय कोई इष्ट-मित्र उसे किसी गलीकी गन्दी नालीसे घसीटता हुआ ले आता तो माताकी आखोंसे छम-छम अश्रुधारा बरसने लगती, वह सोचती थी कि क्या इसे कभी भी समझ न आयगी।

एक दिन शान्तिकुमार शराबकी मूर्च्छासे मुक्त होकर देखता है कि मस्तकपर पट्टी बधी है, शय्याके सरहानेकी ओर माता खड़ी है सूरजकी एक नन्हीं-सी किरण उसके चमकीले काले बालोंसे खेल रही है, और माताकी आंखोंसे अश्रुधारा निकल रही है।

शान्तिकुमारने पूछा माता रोती क्यों हो ? माताने शीघ्रतासे आसू पोछकर कहा—रोती कहा हूं।

शान्तिसे सब नागरिक घृणा करते थे, इसका कोई मित्र न था मात्र इनेगिने स्वार्थियोंके इसका कोई अपना न था, ले-देकर बस माता ही इसका सर्वस्व थी। इसकी दौड़-धूप मातातक थी, इसे यह मातृभक्तिसे सच्चा प्यार करता था, कितने ही बार संसारसे तग आकर वह माताकी गोदमें बैठकर रोने लगता था तथा कई बार इसने मातासे कहा था कि मा यदि तुम्हे कभी किसीने दुखी किया तो मैं उसका सर काट दूगा। कितनी ही बार उसने अपने साथी क्लर्कोंसे कहा था कि मा ! अरे माता जैसी सात्विक और उत्तम ससारमे अन्य क्या है? आज इसी माताको रोते देखकर शान्तिकुमार उद्विग्न हो उठा, बोला—माता सत्य-सत्य कह दो। रोती क्यों हो ?

माताने धीमे स्वरमें कहा रोती हू ! शान्तिकुमार। इसलिये कि तुम शराब पीना नहीं छोड़ते। शान्तिकुमार हँसने लगा—

उसके उपहाससे मकान गूज उठा, बस इसीलिये, यह तो नितान्त निरर्थक-सी बात है मा। मत रोओ—ऐसे धर्मोमें मत फँसो, यह कहता हुआ वह उठकर स्नानागारमे चला गया, माता विस्मित होकर पुतलीकी तरह खड़ी ही रह गई।

* * *

नगरमें अब प्रति दिन मनुष्य अपनेको दमन-नीतिकी अग्निमें बलि देने लगे हैं। लघुवयस्क बालक शराबोंकी दुकानोंका पहरा देते हुए पकड़े जाते हैं परन्तु फिर भी न जाने कहासे नवीन स्वयं-सेवक आ जाते हैं।

शान्तिकुमारने कहा मातः कहा पधारोगी? माताने द्वारमे खड़े-खड़े कहा कि मैं जाऊंगी शराबियोंकी दुकानोंपर। जैसे बने लोगोंको शराब खरीदनेसे मना करूंगी। शान्तिकुमारने रोदन-पूर्वक कम्पित स्वरसे कहा—शराबकी दुकानपर? पता नहीं कितने स्वयसेवक बन्दी-गृहमें जा चुके हैं। माता बोली तब क्या बात है मैं भी बन्दिनी हो जाऊंगी। वह बालकोंकी भाति हठ बांध मार्ग रोककर खड़ा हो गया। बोला माता मैं तुम्हें न जाने दूगा।

रामाबाईने कड़ककर कहा कि आगेसे हट जा। मैं तुम्हारी माता हूं तुम मेरे बाप नहीं हो। यों कहकर वह उसे बलात्कार मार्गसे हटाकर बाहर चली गई। शान्तिकुमारने क्रोध-पूर्वक कहा कि जाओ मेरा क्या बिगाड़ सकोगी, शायद तुम सब दुकानोंपर तो पिकेटिंग न लगाओगी। जहापर तुम न होगी वहीं मैं जाऊंगा।

* * * *

सन्ध्याका समय है। राज-मार्गपर अन्धकार विराजमान है। अभी दीपकोंका प्रकाश नहीं हुआ है। रामाबाई बागमेंसे जा रही है। अन्तस्तल प्रसन्नताके मारे बांसों उछल रहा है। मन ही मन इसे एक आत्म-तेजकी झलक दिखाई दे रही थी, सारा दिन इसने शराबकी दुकानपर पहरा देकर विताया था, इस दिन एक बार भी शान्तिकुमार इधर नहीं आया, उसके मनमें बड़ा आमोद था कि इसका यह शस्त्र काम कर गया है। आज तो शान्तिने शराब न पी होगी। अन्तमें एक समय ऐसा दृष्टिगत होगा कि जब इस मनोबल और चरित्र सगठनकी विजय होगी, इस प्रकार मैं प्रति दिन यहा आया करूंगी, और तब तक शान्तिको विवश होकर यह दुस्वभाव छोडना ही पड़ेगा।

* * * *

इन्हीं विचारोंका आन्दोलन करती हुई वह अपने घर वापिस आ रही थी कि बागमें अन्धकारकी पूर्ण राज्य-सत्ता जम चुकी थी। पक्षीगण वृक्षपर अपने घोसलोंमें शयन करनेको बद्धचेष्ट थे और पश्चिमके आकाशमें एक हलकी-सी लालिमाज्योति शनैः-शनैः अन्तर्धान होती जाती थी और रामाबाई वृक्षोंको पार करती हुई अपने घरको जा रही थी।

* * * *

सामनेसे कोई लड़खड़ाता हुआ आ रहा है, इसकी वाणी शराब-की अधिक मात्रा पी जानेके कारण निकृष्ट हो गई है, वह अश्लील गीत भी गा रहा है। रामाबाई एक ओर सटकर खड़ी हो गई

जिससे पत्रोंमेसे आती हुई ज्योतिकी अन्तिम किरण छन छन कर इसके मुखमण्डलपर पड़ने लगी।

आगन्तुक पुरुप इसे अनायास देखकर मारे प्रसन्नताके एकदम उछल पडा और वोला जा · न ··

रामावाई द्रुत गतिसे आगे वढी। मद्यपने दौडकर उसे पकड़ लिया और ताण्डव नृत्य करता हुआ वोला कि अव ···· दूंगा।

रामावाईने अव इसे अच्छी भाति देखा तो इसके हाथोंके तोते उड़ गये और सताई हुई सिंहनीकी तरह गर्जकर वोली कि ओ शान्ति। परे हट जा, परन्तु शान्तिकुमारने मदिराके अन्ध और पाशविक वलमे ग्रसित होकर उसे और भी दृढता-पूर्वक दवाकर पकड़ लिया और नाचता हुआ वोला कि अव ·· तो······अव तो··· · अव··· 'प्या··· · ।

रामावाईने अपने आपको छुडानेकी अत्यन्त चेष्टा की परन्तु शान्तिमे पाशविक वल आ जानेके कारण रामावाईको जमीनपर गिरा दिया, रामा भयभीत होकर वोली शान्ति। शान्ति। मैं तुम्हारी माता हू छोड दो।

परन्तु शान्ति इस संस्मृतिमे नहीं था कि जहा कोई किसीकी वाणीकी पुकार सुनता है। इसने तो रामावाईके कपड़े तक फाड दिये। यदि लोक उसकी घोर पुकारपर न आकर छुडाते तो ··· ·।

* * * *

अव सूर्यनारायण उदयाचलकी क्रीडा करते-करते उदय हो रहे हैं। इनकी किरणें गवाक्षोंमेसे मानो झाक-झाककर देख रही हैं।

शान्तिकुमारकी मूर्च्छा टूटी और देखा तो सिरहाने जिनमोहन डाक्टर वैठे हैं। मस्तकपर वरफ फेर रहे हैं, इनके पास ही कम्पाउण्डर उनसे खड़ा-खड़ा वातें कर रहा है इन्हे देखकर शांतिकुमारने आखें मींच लीं और सोचता है कि मैं कहां हूं। कुछ स्मरण नहीं होता ..... घरसे जाकर खूव मदिरा पी थी, फिर मैं वागकी ओर गया था... स्मृति नहीं .... हा फिर मानो किसीसे लड़ाई हुई थी, या तागेके नीचे आ गया था .....शायद .....इसी अवस्थामें डाक्टर अपने कम्पाउण्डरसे कह रहे थे कि......यथार्थ है पशुमें और शरावीमें अन्तर ही क्या होता है? यदि कल मनुष्य बाईजीकी पुकार सुनकर वहा न पहुंचते तो यह नराधम रामाको न जाने मार ही डालता। शान्तिकुमार चौंक पड़ा, परन्तु आंखें मींचकर पड़ा ही रहा......कम्पाउण्डरने कहा कि 'डाक्टर महोदय! क्या इसे यह ज्ञान न था कि यह हमारी माता है।" वे वोले कि अधिक नशा पीनेसे मस्तिष्क शक्ति इतनी नष्ट प्रायः हो जाती है कि शून्यता छा जानेके कारण आंखें देखकर भी नहीं देखतीं, कान सुनकर भी नहीं सुनते।

शांतिको इस समय कम्पकम्पी आ रही थी, डाक्टरने समझा कि यह वेसुध है, लरजा आ रहा है, परन्तु वह सुधमें था, चेतमें था, सव कुछ सुना था, सव कुछ समझा था। चिकित्सक अपने सहचरसे कहता है कि जो आदमी मातापर भी हाथ उठा सकता है तथा मातापर भी अत्याचार करनेपर उतारू हो जाता है, क्यों कम्पाउण्डर मादक। इनमें और उसमें क्या अन्तर है? कम्पाउण्डर वोला—

डाक्टर साहव, धीमे स्वरमे कहते हैं कि वह कुत्तेसे भी बुरा है। कुत्तेको अकल नहीं होती परन्तु मनुष्य तो बुद्धिका सागर होता है। कुत्ता यदि ऐसा करे तो वह तो अन्तमे मात्र कुत्ता ही है। परन्तु मनुष्य यदि ऐसा करे तो वह कुत्ता नहीं किन्तु कुत्तेसे भी बदतर है। शान्तिकुमारके शरीरसे प्रस्वेद वह रहा था। उसका मुख-मण्डल रक्त वर्ण हो उठा। एक वार डाक्टरको प्रतीत हुआ कि इसके दात कटकटा रहे हैं और पुनः मूर्च्छित हो गया है, कम्पाउण्डरने कहा—कि चलिये न पट्टी तो समाप्त हो चली है, इसकी अभी सुपुप्ति ही नहीं टूटी।

डाक्टरने कहा हा चलो जरा साथवाले प्रासादमे रामावाईको फिर देख आवें। इस समय तुमने औपधि तो पिला दी है न ?

कम्पाउण्डरने कहा हा। और वह दोनों वाहिर जाने लगे। उस समय शान्तिकुमारने कहा "कुत्तेसे भी वदतर

वे दोनों खड़े हो गये—शान्तिकुमार बडवडा रहा है, कुत्तेसे भी वदतर—कुत्तेसे भी वदतर—डाक्टरने कहा शातिकुमार ? परन्तु वह अचैतन्य हो कुछका कुछ बक रहा था—मा—मा वालक अवस्थामें तेरा दूध पिया था। शीतल रात्रियोंमे प्रेम पूर्वक शयन कराया था—तूने मोहकताके आसू बहाये थे, मैंने तुम्हें इसका वदला दिया है, कुत्तेसे भी बदतर—कुत्तेसे भी वद-तर—डाक्टरने कहा शातिः···

शातिकुमारने कहा तुम रोती थी—तुम चिल्लाती थी—तुम कहती थीं कि मैं तुम्हारी मा हूं—मा हू और मैं ? कुत्तेसे भी—

कुत्ते—से भी—एकाएक डाक्टरने कहा! अरे इसका तो दिल वैठता जा रहा है—वराडी लाओ!

कम्पाउण्डरने शीघ्रतापूर्वक वोतल निकालकर शातिके मुखके निकट लगा दी—इसकी गधसे शान्तिकुमार जग पड़ा। डाक्टरने कहा शाति, इसे पी जाओ। शान्तिकुमारने कहा "नहीं, मैं शराव न पीऊंगा"

"शातिकुमार! यह दवाई है" शातिकुमारने कड़क होकर कहा कि "मैं न पीऊंगा" डाक्टर, आजसे शराव न पीऊंगा—दवाई भी मैं न पीऊंगा। समझे चले जाओ यहासे" यों कह कर वह पुनः अचेत हो गया!

वास्तवमें शान्तिकुमारने उस दिनसे शराव नहीं ही पी। एकदम शराव त्याग देनेसे दूसरे ही दिन इसके शरीरमे निर्वलताके कारण लरजा आने लगा, अग प्रत्यगमे कष्ट होने लगा, पहिले वह उठा था परन्तु अशक्त होनेसे गिर पडा और वह फिर चारपाई सेवन ही करता रहा।

डाक्टरने कहा शान्तिकुमार। तुम्हे थोड़ीसी मदिरा पानीमे मिलाकर अवश्य पीनी पड़ेगी। उसने कहा—डाक्टर, मैं कितनी वार कह चुका हूं? मैं न पीऊंगा। मर जाऊंगा पर शराव न पीऊंगा। मैंने शराव छोड दी है "भाई? यह टग छोड़नेका नहीं है थोड़ी-थोड़ी छोडी जा सकेगी" शान्तिने आवेशमे कहा--सकेगी से कुछ प्रयोजन नहीं है। मैंने त्याग दी है वस? जाओ।

डाक्टर निराश होकर चले गये। गामा वाई वायल थी—

शयनागारसे उठकर आई—माको देखते ही शान्तिकुमारने आखे नीची कर ली।

रामा—थोड़ी-सी शराब पी लेनेमें कुछ हानि नहीं है। शान्तिकुमार बोला, नहीं रामा—तुम बड़े वीर विक्रान्त योद्धा हो बेटा? मैं समझती हूं कि तुम अपने विचारके बड़े पक्के हो, और उत्तीर्ण हो जाओगे। परन्तु स्वास्थ्य रक्षाके लिये ही थोड़ी सी पी लो—शान्ति मौन हो रहा। रामा बाई—इधर देखो शान्तिने मस्तक उठाया, अश्रुपात हो रहे थे। रामा रोने लगी और भर्राई हुई आवाजमें कहा—स्वीकार है—शातिने मस्तक हिलाकर नाहीं कर दी।

* * * *

कई दिन व्यतीत हो गये—प्रति दिन वह निर्बल होता जाता है—अचैन्यता कई घंटे नहीं टूटती—और मूर्छितावस्थामें वह कितने ही बार बड़बड़ाने लगता—कि कुत्तेसे भी बदतर—कुत्तेसे भी बदतर मैं तुम्हारी मा हूं—शांति। मैं तुम्हारी मां हूं—कुत्ते से······

रामा बाई अब शातिके पास ही बैठी रहती है।

एक दिन उषःकालमें शातिने कहा कि मैं स्नान करूंगा, और वह इस प्रकार उठ कर चलने लगा मानों उसे कभी रोग ही नहीं हुआ। स्नान करनेके पश्चात् बोला कि, माता मुझे आज नवीन वस्त्र पहना दो—माताने नये कपड़े निकाल दिये। शांतिकुमार उन्हें पहन कर बोला—मां आज भूमिपर एक चटाई बिछाकर नया बिस्तर लगा दो।

मातानेे कहा यह क्यों, वह बोला जी चाहता है कि आज भूतलपर सोऊं। चटाईपर एक श्वेत वस्त्र बिछा दिया और उसपर शांतिकुमार सोकर बोला कि माता जिस ओर मेरा मस्तक है उस ओर आकर खड़ी हो जाओ, माताके उस ओर खड़ी होनेपर उसने फिर यह प्रार्थना की कि यह सरहाना हटा दो। माताने सरहाना अलग कर दिया।

माता! अपने चरण आगे कर दो—तो मैं उनपर अपना मस्तक रख लूं। माताने ऐसा ही किया तब चरण जुगलमे मस्तक रखकर फिर शांतिकुमारने निवेदन किया माताजी एक वस्तु मांग लूं दोगी!—क्या मांगते हो बेटा, प्रथम वचन दो कि दूंगी—कुछ कहेगा। भी बेटा' ...

शांतिकुमार—माता यह कहो कि मैंने अपने बदमाश बेटेको माफ कर दिया जो कुत्तेसे भी बदतर था।

रामाबाईकी आंखोंमें आंसू भर आये और बोली पुत्र! इसमें तुम्हारा क्या अपराध था?

माता! अपने प्रणसे क्यों फिर रही हो—तुमने कहा था कि जो मांगेगा वही मिलेगा—माताने बहुत अच्छा। बेटा क्षमा किया।

शांतिकुमार—नहीं माता इस प्रकार कहो कि मैंने अपने बदमाश बेटेको क्षमा कर दिया कि जो कुत्तेसे बदतर था—यह सब कुछ कहो। रोते हुए माताने कहा कि यह मैं नहीं कहूंगी कि तुम बदमाश हो।

अपने अश्रुधारासे माताके चरण धोकर कहने लगा कि माता आपको कहना होगा और यही कहना होगा। रोदन पूर्वक माता

कह रही है कि "मैंने अपने वदमाश वेटेको माफ किया जो कुत्तेसे भी वदतर था।"

शातिकुमारने मंदस्वरमें कहा—माता बड़े सौभाग्यकी बात है कि जो आपने क्षमा कर दिया—अच्छा अव प्रणाम हो। इस प्रकार कह कर वह रामाके चरण कमलोंमे ऐसा सोया कि जैसा समस्त संसार सोता आया है कि जो फिर निद्रा भंग नहीं होती।

—सुमित्त भिक्खु

भिक्षुसिंह और राजसिंह

मगध देशका राजा श्रेणिक बड़ा प्रतापी और ऐश्वर्यवान् था। राजाओंके पास जितने सामान होते हैं उसके पास भी सभी भरे हुए थे। मानो वह पृथ्वी परका दूसरा इन्द्र था। वह बड़ा विद्यानुरागी और विद्वान भी था। उसकी प्रजा बड़ी सुखिया थी। श्रेणिक किसी प्रकारका किसीको भी दुःख नहीं देता था, किसीका भी अधिकार नहीं छीनता था। प्रजापर कर तो इतना थोड़ा लगा रखा था कि देनेमें किसीको कुछ भी भार नहीं होता था। प्रजाको प्रसन्न रखना उसने अपना कर्तव्य समझ लिया था, यद्यपि राजपाट करता था परन्तु उसका हृदय बड़ा ही सरल और साफ था। वह मद्यपान करके सफेद चमड़ेपर मरता नहीं था, न किसी भांतिकी हिंसा ही करता था। एक दिन वही राजा अपने मनको बहलानेके लिये रथपर चढ़कर मण्डित कुक्षि नामके उद्यानमें जा निकला।

नन्दन वनके समान उस उद्यानकी परम मनोहर शोभाको

देखकर उसका मन मोहित हो गया। विविध प्रकारके हरेभरे वृक्ष वहांपर खड़े थे। उनपर अनेक भांतिकी लतायें लटक रही थीं।

रंग-विरंगे फूल फूले हुए थे, सैकड़ों ढंगके फल लगे हुए थे, कहीं मोर नाच रहे थे, कहीं तोते बोल रहे थे कहीं झीलों और सरोवरों-पर हंस क्रीड़ा कर रहे थे, मछलियां उछल रही थीं जलकुक्कुट विहार कर रहे थे, पनडुब्बियां डुबकी लगा रही थीं, बगुले कपटी मुनियोंकी भांति एक पांवसे खड़े होकर ध्यान लगाये हुए थे, किनारोंपर तितलियां उड रही थीं।

कहीं हाथियोंका झुण्ड घूम रहा था, कहीं सिंह गर्ज रहे थे, कहीं नील गायें चर रही थीं, कहीं हिरण भी फुदक रहे थे, कहीं सांप आकाशमें फण उठाये आंख मूंदे हुए हवा पी रहे थे, परन्तु सभी शान्त निश्चल थे, किसीमें भी क्रोध या भय एवं वैर विरोधका लेश न था।

यद्यपि घाम कड़ा न था, तो भी महीना चैतका था, सूर्यका तेज कुछ-कुछ बढ चला था, इसीलिये वह राजा वनकी छवि देखता हुआ एक घनी छायावाले बटवृक्षके नीचे जाकर खडा हो गया।

उस वृक्षके परोपकारपर वह राजा अपनेको न्यौछावर करने लगा, कहीं उसकी डालियोंपर बन्दर सो रहे थे, कहीं उसके कोटरोंमे अगणित जीव निवास कर रहे थे, कहीं उसके टूसोंको भौंरे चूस रहे थे।

थोड़ी देरके बाद अचानक उस राजाने देखा कि उस वृक्षके

पास ही सुख भोग करनेके योग्य अति सुकुमार एक साधु भी बैठा हुआ है। उस मुनिको देखने ही से यह बात झलकती थी कि वह पण्डित और जितेन्द्रिय है।

महात्माके अलौकिक रूपको देखकर वह राजा बड़े अचम्भेमे पड़ गया, किन्तु बड़े प्रेम और भक्ति-भावके साथ उस मुनिको राजाने प्रणाम किया, फिर उसकी प्रदक्षिणा करके अति नम्रतासे हाथोंको जोड़कर थोड़ी दूरपर बैठ गया, और बोला, हे मुने! आपने इस तरुण अवस्थामे ही क्यों सन्यास धारण किया? आपका यह समय तो भोग-विलास करनेका है, विरक्त कैसे हुए? आप क्यों अचानक बड़े श्रमसे मिलने योग्य श्रमण पदवीको प्राप्त हुए। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है इस कारण कृपा कर इस अपने भेदको मुझे सुनाइये।

मुनिने कहा हे राजन। यदि आपको कुछ कुतूहल है तो सुनिये, मैं अनाथ हूं, संसारमे मेरा कोई रक्षक नहीं है और न अपना सगी-साथी कोई दिखलाई पडता है जो मेरे ऊपर कृपाकर कुछ सहायता करे, मुझे ढाढ़स दे।

मुनिके वचनको सुन कर मगधाधिपति राजा श्रेणिक हंस पडा, और सिर झुका कर बोला, हे मुने! आप स्वयं ऋद्धि-सिद्धियोंके नाथ हैं आप अनाथ कैसे हैं? तो भी यदि आप अपनेको अनाथ समझते हैं तो मैं आपका नाथ बन सकता हूं, मेरी सहायतासे संसारमें जितने सुख मनुष्यके लिये आवश्यक हैं वे सब आपको सुलभ हो जायगे, किसीकी [illegible] हो जायगी, किसी बातकी कमी न रहेगी। आप

चैनके साथ इस मनुष्य जन्मका सुख लीजिये। क्यों इस भोगके समयमे योगकी साधना कर रहे हैं ?

इस तरह अज्ञान और अहकारसे भरे हुए राजाके वचनको सुनकर मुनिने कहा, राजन्। आप क्या कहते हैं ? आप तो अपनी आत्माके भी नाथ नहीं हैं, जो मनुष्य अपने ऊपर भी अपना अधिकार नहीं रख सकता वह दूसरेपर क्या अधिकार करेगा ? इसलिये त्रिकालमे भी आप मेरे नाथ नहीं हो सकते। क्या अन्धा भी दूसरेको रास्ता वता सकता है ? इसी भाति उस साधुकी वातको सुनकर वह राजा बड़े अचम्मेमें पड गया क्योंकि पहले कभी भी वैसी वात किसीने न कही थी। इसलिये उसका माथा चक्कर खाने लगा, घवड़ा कर वह वडी फुर्तीसे वोला।

महात्मन्। ऐसी वात क्यों कहते हैं, मेरे पास अत्यधिक हाथी-घोड़े हैं, नौकर-चाकर हैं, खजाना है, रानिया हैं, ग्राम नगर हैं जितने भोग मनुष्योंके भोगनेके हैं मैं उन्हें भोग रहा हू, मेरी आज्ञाको सभी मानते हैं। मैं नरेन्द्र हू, सभी प्रकारके सुख-सामान मेरे पास हैं, हे मुनि। जिसके पास इतने धन-धान्य हों जो सव प्रकारके सुखका उपभोग कर रहा हो वह अनाथ कैसे हो सकता है ? आप महात्मा होकर भी ऐसी वेढगी वात क्यों कहते हैं ?

मुनिने कहा—हे राजन्। आप अनाथ शब्दके सच्चे अर्थको नहीं जानते मनुष्य किस तरह अनाथ या सनाथ होता है उसे मन लगा-कर सुनिये, हे भूप। कौशांवी नामकी नगरीमे मेरे पूज्य पिता रहते थे, वह नगरी इन्द्रकी अमरावतीको भी लजा रही थी। मेरे

पास ही सुख भोग करनेके योग्य अति सुकुमार एक साधु भी बैठा हुआ है। उस मुनिको देखने ही से यह बात झलकती थी कि वह पण्डित और जितेन्द्रिय है।

महात्माके अलौकिक रूपको देखकर वह राजा बड़े अचम्भेमे पड़ गया, किन्तु बड़े प्रेम और भक्ति-भावके साथ उस मुनिको राजाने प्रणाम किया, फिर उसकी प्रदक्षिणा करके अति नम्रतासे हाथोंको जोड़कर थोड़ी दूरपर बैठ गया, और बोला, हे मुने। आपने इस तरुण अवस्थामे ही क्यों सन्यास धारण किया? आपका यह समय तो भोग-विलास करनेका है, विरक्त कैसे हुए? आप क्यों अचानक बड़े श्रमसे मिलने योग्य श्रमण पदवीको प्राप्त हुए। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है इस कारण कृपा कर इस अपने भेदको मुझे सुनाइये।

मुनिने कहा हे राजन्। यदि आपको कुछ कुतूहल है तो सुनिये, मैं अनाथ हूं, संसारमे मेरा कोई रक्षक नहीं है और न अपना सगी-साथी कोई दिखलाई पडता है जो मेरे ऊपर कृपाकर कुछ सहायता करे, मुझे ढाढस दे।

मुनिके वचनको सुनकर मगधाधिपति राजा श्रेणिक हँस पडा, और सिर झुकाकर बोला, हे मुने। आप स्वयं ऋद्धि-सिद्धियोंके नाथ हैं आप अनाथ कैसे हैं? तो भी यदि आप अपनेको अनाथ समझते हैं तो मैं आपका नाथ बन सकता हूं, मेरी सहायतासे ससारमें जितने सुख मनुष्यके लिये आवश्यक हैं सब आपको सुलभ हो जायंगे, मित्रोंकी भरमार हो जायगी, किसी बातकी कमी न रहेगी। आप

चैनके साथ इस मनुष्य जन्मका सुख लीजिये। क्यों इस भोगके समयमे योगकी साधना कर रहे हैं ?

इस तरह अज्ञान और अहकारसे भरे हुए राजाके वचनको सुनकर मुनिने कहा, राजन्। आप क्या कहते हैं ? आप तो अपनी आत्माके भी नाथ नहीं हैं, जो मनुष्य अपने ऊपर भी अपना अधिकार नहीं रख सकता वह दूसरेपर क्या अधिकार करेगा ? इसलिये त्रिकालमें भी आप मेरे नाथ नहीं हो सक्ते। क्या अन्धा भी दूसरेको रास्ता बता सकता है ? इसी भांति उस साधुकी बातको सुनकर वह राजा बड़े अचम्मेमें पड गया क्योंकि पहले कभी भी वैसी बात किसीने न कही थी। इसलिये उसका माथा चक्कर खाने लगा, घबडा कर वह बड़ी फुर्तीसे बोला।

महात्मन। ऐसी बात क्यों कहते हैं, मेरे पास अत्यधिक हाथी-घोड़े हैं, नौकर-चाकर हैं, खजाना है, रानिया हैं, ग्राम नगर हैं जितने भोग मनुष्योंके भोगनेके हैं मैं उन्हे भोग रहा हू, मेरी आज्ञाको सभी मानते हैं। मैं नरेन्द्र हू, सभी प्रकारके सुख-सामान मेरे पास हैं, हे मुनि। जिसके पास इतने धन-धान्य हों जो सब प्रकारके सुखका उपभोग कर रहा हो वह अनाथ कैसे हो सकता है ? आप महात्मा होकर भी ऐसी बेढगी बात क्यों कहते हैं ?

मुनिने कहा—हे राजन्। आप अनाथ शब्दके सच्चे अर्थको नहीं जानते मनुष्य किस तरह अनाथ या सनाथ होता है उसे मन लगा-कर सुनिये, हे भूप। कौशावी नामकी नगरीमे मेरे पूज्य पिता रहते थे, वह नगरी इन्द्रकी अमरावतीको भी लजा रही थी। मेरे

न घटा अर्थात् मेरे दुखका वांटनेवाला कोई भी न दिखलाई पड़ा, इस लिये मैंने अपनेको अनाथ समझ लिया।

मेरे संगी साथी दास दासिया सभी रोने कलपनेके सिवा कुछ भी काम न आये। राजन्। मेरी स्त्री भी सदा मुझसे प्रेम किया करती थी, और पतिव्रता भी थी, लेकिन वह मेरी कुछ भी सहायता न कर सकी, उसने केवल नहाना धोना खाना पीना शृंगार करना और सोना भी छोड़ दिया, अर्थात् सब सुखोंसे विमुख हो गई, हा इतना उस वालाने अवश्य किया कि मुझे छोड़कर पलभर भी कहीं न गई, और स्नेह भरे अपने नेत्रके जलसे मेरी छाती सींचती रही, उसका कमलसा मुख सूख गया, किन्तु उससे क्या हुआ कुछ भी नहीं, मेरा दुख ज्योंका त्यों वना रहा इस कारण मैंने अपनेको अनाथ समझ लिया।

हे भूप। तव मैंने सोच विचार करके अपने मनमे कहा कि इस असार ससारमे वारम्वार दुख ही दुखका अनुभव करना पड़ेगा, सुखका लेश मात्र भी न होगा इसलिये यदि इस कठोर दुखसे सदाके लिये छूटना चाहूं तो अपनी इन्द्रियोंको वशमे करके शान्त रूप होकर मनके सकल्प विकल्पको छोड दूं तथा घरसे अलग होकर सन्यासको ले लू, जिससे कि ससारमें रहते हुए भी सदाके लिये सव दुखोसे छूट जाऊँ।

हे नराधिप। इसी भाति सोचते विचारते मुझे नींद आ गई, मानो धर्मने सहायता की और रातके वीतते-वीतते मेरी पीड़ा आप ही आप दूर हो गई, जव सवेरे उठा तो मैंने अपनेको नीरोग पाया

पिताके पास धन और रत्नोंकी कमी नहीं थी। मेरे घरवाले मुझे बड़ा प्यार करते थे, मेरा बालकपन बहुत सुखसे बीता जा रहा था, जब मैं किशोर अवस्थाको प्राप्त हुआ तो एक दिन अचानक मेरी आंखें बड़े वेगसे दुखने लगीं, सब शरीर जलने लगा, रोम रोममें कांटेसे चुभने लगे, मैं बेचैन होकर रोने कराहने लगा, जैसे शत्रुके चोखे चोखे तीरोंके लगनेसे देहमे क्लेश होता है उसी भांति मुझे भी पीड़ा होने लगी। मैं विना पानीके मछलीकी तरह छटपटाने लगा। मेरी कमर टूटी पड़ती थी, सिर टूक-टूक-सा होकर मानो उड़ा जाता था। मनोरथ भंग हो गया, मानो मेरे ऊपर वज्र आ गिरा।

हे राजन्! मेरे पिता मुझे प्राणके सम समझते थे, फिर देर क्यों लगती? मेरे पिताजीकी आज्ञासे प्राण और धनको लूटनेवाले बड़े-बड़े वैद्य, मन्त्र तन्त्रके जानेवाले बड़े-बड़े पूजक, झाड़ फूक करनेवाले नामी नामी सयाने, और चीर फाड़ करनेवाले जर्राह भी बातकी बातमें मेरे पास आ धमके, और मुझे रोगसे छुड़ानेके लिये वे सबके सब मिलकर अनेक प्रकारसे दवा दारू करने लगे, विविध उपाय होने लगे, परन्तु मुझे कुछ भी लाभ न हुआ, तनिक भी रोग न घटा, यही मेरी अनाथता है।

राजन! मेरी माता और मेरे पिता दोनोंने ही मेरे दुःखसे दुखी होकर मेरे लिये भूमि रत्न धन धान्य लुटाना आरम्भ कर दिया और विधि पूर्वक सत्पात्रोंको दान भी देने लगे, मेरे सगे भाई जो छोटे बड़े थे सभी सिसक-सिसक कर रोने लगे, बहिनें भी उदास और निराश होकर रोने पीटने लगीं पर मेरा दुख कुछ भी

पिताके पास धन और रत्नोकी कमी नहीं थी। मेरे घरवाले मुझे बड़ा प्यार करते थे, मेरा बालकपन बहुत सुखसे बीता जा रहा था, जब मैं किशोर अवस्थाको प्राप्त हुआ तो एक दिन अचानक मेरी आखें बड़े वेगसे दुखने लगीं, सब शरीर जलने लगा, रोम रोममें काटेसे चुभने लगे, मैं बेचैन होकर रोने कराहने लगा, जैसे शत्रुके चोखे चोखे तीरोंके लगनेसे देहमे क्लेश होता है उसी भाति मुझे भी पीड़ा होने लगी। मैं विना पानीके मछलीकी तरह छटपटाने लगा। मेरी कमर टूटी पड़ती थी, सिर टूक-टूक-सा होकर मानो उड़ा जाता था। मनोरथ भंग हो गया, मानो मेरे ऊपर वज्र आ गिरा।

हे राजन्। मेरे पिता मुझे प्राणके सम समझते थे, फिर देर क्यों लगती ? मेरे पिताजीकी आज्ञासे प्राण और धनको लूटनेवाले बड़े-बड़े वैद्य, मन्त्र तन्त्रके जानेवाले बड़े-बड़े पूजक, झाड फूक करनेवाले नामी नामी सयाने, और चीर फाड़ करनेवाले जर्राह भी बातकी बातमें मेरे पास आ धमके, और मुझे रोगसे छुड़ानेके लिये वे सबके सब मिलकर अनेक प्रकारसे दवा दारू करने लगे, विविध उपाय होने लगे, परन्तु मुझे कुछ भी लाभ न हुआ, तनिक भी रोग न घटा, यही मेरी अनाथता है।

राजन ! मेरी माता और मेरे पिता दोनोने ही मेरे दुःखसे दुखी होकर मेरे लिये भूमि रत्न धन धान्य लुटाना आरम्भ कर दिया और विधि पूर्वक सत्पात्रोंको दान भी देने लगे, मेरे सगे भाई जो छोटे बड़े थे सभी सिसक-सिसक कर रोने लगे, बहिनें भी उदास और निराश होकर रोने पीटने लगीं पर मेरा दुख कुछ भी

न घटा अर्थात् मेरे दुखका बाटनेवाला कोई भी न दिखलाई पड़ा, इस लिये मैंने अपनेको अनाथ समझ लिया।

मेरे सगी साथी दास दासिया सभी रोने कलपनेके सिवा कुछ भी काम न आये। राजन्! मेरी स्त्री भी सदा मुझसे प्रेम किया करती थी, और पतिव्रता भी थी, लेकिन वह मेरी कुछ भी सहायता न कर सकी, उसने केवल नहाना धोना खाना पीना शृंगार करना और सोना भी छोड़ दिया, अर्थात् सब सुखोंसे विमुख हो गई, हा इतना उस बालाने अवश्य किया कि मुझे छोड़कर पलभर भी कहीं न गई, और स्नेह भरे अपने नेत्रके जलसे मेरी छाती सींचती रही, उसका कमलसा मुख सूख गया, किन्तु उससे क्या हुआ कुछ भी नहीं, मेरा दुख ज्योंका त्यों बना रहा इस कारण मैंने अपनेको अनाथ समझ लिया।

हे भूप! तब मैंने सोच विचार करके अपने मनमे कहा कि इस असार ससारमें बारम्बार दुख ही दुखका अनुभव करना पड़ेगा, सुखका लेश मात्र भी न होगा इसलिये यदि इस कठोर दुखसे सदाके लिये छूटना चाहूं तो अपनी इन्द्रियोंको वशमे करके शान्त रूप होकर मनके सकल्प विकल्पको छोड़ दूं तथा घरसे अलग होकर सन्यासको ले लू, जिससे कि ससारमे रहते हुए भी सदाके लिये सब दुखोंसे छूट जाऊँ।

हे नराधिप! इसी भांति सोचते विचारते मुझे नींद आ गई, मानो धर्मने सहायता की और रातके बीतते-बीतते मेरी पीड़ा आप ही आप दूर हो गई, जब सवेरे उठा तो मैंने अपनेको नीरोग पाया

और अपने भाई-बन्दोंसे पूछकर झटपट सन्यास ग्रहण कर लिया, हे राजन्। तबसे अपने और परायेका मैं स्वामी हो गया, समस्त स्थावर जंगमोंका राजाओं प्रजाओंका नाथ बन गया, इस एकान्त बासके सामने अमरावती भी फीकी पड़ जाती है।

हे राजन्। आप अब भी कुछ समझे या नहीं? अपनी आत्मा ही नरकके निकट बहनेवाली वैतरणी नदी है, आत्मा ही पहाड़की चोटीके समान सेमर या शाल्मली वृक्ष है, वही कामधेनु है और वही स्वर्गका नन्दन वन है। राजन्। यदि अपनी आत्मा दुराचारिणी हुई तो शत्रु रूप होकर दुख देनेवाली और सुखका नाश करनेवाली हो जाती है, और यदि वह अच्छी हुई तो सुखको देनेवाली दुखका नाश करनेवाली हो जाती है, अर्थात् दुख सुखका मूल अपनी आत्मा है दूसरेको दोष देना व्यर्थ है, इसीलिये मैंने सन्यास ग्रहण करके अपनी आत्माको अच्छे पथपर स्थित कर दिया है क्योंकि शुद्ध स्वभावयुक्त आत्मा चिन्तामणि कल्पतरुसे भी बढ़कर मनोरथको पूर्ण करनेवाली है।

राजाके मुखके भावको देखकर मुनिने समझ लिया कि अभी राजाका ज्ञान नेत्र नहीं खुला और न उपदेशसे उसे तृप्ति हुई है इसीलिये महात्माने उससे फिर कहा—

हे नृप। जिस एक प्रकारकी अनाथताके नाश होनेसे मैं नाथ हुआ हू उसे आप सुन चुके। अब मै अपनी तथा औरोंकी दूसरी अनाथताको कहता हू स्थिर मन होकर उसको भी सुनिये, क्योंकि वह भी नष्ट हो चुकी है तभी तो मैं स्वय अपना स्वामी हुआ हूं।

राजन्। वह अनाथता यह है कि अच्छे आचारको प्राप्त करके भी वहुतेरे कायर नर वड़े-बड़े दु:खको पाते हैं।

हे भूप। जो मनुष्य सन्यास लेकर भी भूलमे पड़कर महाव्रतोंका भलीभाति सेवन नहीं करता अपनी आत्माको वशमे न करके विषयमे फँसा हुआ है, वह ससारके वन्धनको जड़से नहीं काट सकता अर्थात् उसके राग-द्वेप, मद-मोह, मत्सर आदिक कभी नष्ट नहीं होते।

हे भूप। जिस मनुष्यमे कुछ भी सावधानी नहीं है जिसका लेना-देना निन्दासे युक्त है वह मुनि उस मुक्तिके पथपर नहीं जा सकता जिसपर कि पहले वीर लोग जा चुके हैं। हे राजन्। जो मनुष्य अच्छे-अच्छे अनुष्ठानोंको छोडकर वहुत कालसे मुड़िया बना हुआ है और सच्चे तप नियमोंसे भ्रष्ट हो रहा है और उसके व्रत भी नियमित नहीं हैं वह मुनि वालोंका लूचनक्रियाओंसे अपनी आत्माको वहुत दु:ख देकर भी ससार-सागरसे पार नहीं जा सकता।

हे राजन। जैसे धानकी खीलोंको और जादूसे वने हुए रुपयेको मुट्ठीमे रखना व्यर्थ होता है, अर्थात मुट्ठी खुलते ही खीलें विखर जाती हैं और रुपया उड जाता है उसी प्रकार धन जोड़नेवाला मुनि धार्मिक जनोंकी दृष्टिसे गिर जाता है ससारमे वह अजाके गलस्तनके समान या कुत्तेकी पूछके तुल्य व्यर्थ समझा जाता है अथवा जैसे प्रकाशमान वैडूर्य्य मणिके सामने काचका दाम नहीं लगता उसी भाति वुद्धिमान मनुष्योंमे वनावटी मुनिकी दाल नहीं गलती अर्थात्

जैसे जगली लोग काचको उत्तम पदार्थ समझ कर आभूषण वनाते हैं और नागरिक मनुष्य उसे तुच्छ वस्तु समझ कर फेंक देते है उसी भाति वेसमझ मनुष्य भले ही कपटी साधुके फेरमे पड़ जावें लेकिन जो ज्ञानवान विवेकी है वे कभी भी धन जोड़नेवाले मुनिका सत्कार नहीं करते।

हे भूप। जो धूर्त मुनि संसारको ठग कर पेट भरनेके लिये या विषय-भोग करनेके लिये सिर मुड़वा कर या वालोंको वढ़ा भस्म रमाकर साधुओंके चिह्नोंको बनाता है और मर्यादा हीन होकर अर्थात् पतित होकर भी अपनेको मर्यादा पुरुपोत्तम कहता है उसका कभी स्वप्नमें भी निस्तार नहीं हो सकता, उसको चिरकाल तक नरकके कठिन कष्टोंको रो-रोकर भोगना पड़ता है।

हे राजन्। जसे हलाहल विषका पीनेवाला नहीं जी सकता, जैसे अनाड़ी आदमी बंवगोले, वंदूक आदिको चलाकर स्वयं कालके गालमे चले जाते हैं इसी भाति धर्मकी ओटमे जो कपटी मुनि विषयके रसको चखनेके लिये चलता है उसे आत्म-घाती समझना चाहिये क्योंकि जो इन्द्रियोंको तृप्त करनेमें लगा रहता है वह उन्हींके हाथोंका शिकार बन जाता है और जिसके सिरपर विषयरूपी भूत चढ़ जाता है वह कभी नहीं बच सकता, उसकी इस लोकमें निन्दा और पर-लोकमें बडी दुर्गति होती है।

हे राजन्। मुनि वेषधारी जो ठग हाथकी रेखाओंके फल बताकर स्वप्नके गुण-दोष बताकर और मंगल, शनैश्चर आदि ग्रहोंके फल सुना कर तथा झाड़-फूक करके किसीको धन किसीको पुत्र देनेकी

प्रतिज्ञा करता है या तन्त्र-मन्त्र दिखलाता हुआ सिद्ध बनकर सीधे मनुष्योंसे अपनी मुट्ठी गरम करता है, उस नीचको अपने कुकर्मोका फल भोगते समय कहीं भी शरण नहीं मिलता, वह अन्धतम घोर नरकमे भी धक्के खाता फिरता है।

हे राजन्! अत्यन्त झूठाईके कारण महा अज्ञानके वश हो वह द्रव्य मुनि शीलसे रहित हो सदा दुःखी रहता है और उलटे फलको पाता है अर्थात् सुगतिके बदले उसको दुर्गति मिलती है और वह असाधु दम्भके मारे मौन होकर मिथ्या आचारको दिखलाता हुआ घोर नरकमे जाकर गिरता है अर्थात् सूकरादिक महापतित पशुओं-की योनिमे जन्म पाता है।

हे भूप! जो नीच प्रकृतिका मनुष्य मनुष्योंके न खाने योग्य अयोग्यतासे उपजे हुए अपवित्र वस्तुओंको भी माग-मागकर खाता है, पेटके वश हो हिंसासे तैयार हुए मासादिक भी नहीं छोडता सब गटक जाता है। जैसे आग अच्छे-बुरे सब तरहके पदार्थोंको जलाकर राख कर देती है उस तरह वह अविचारी साधु भी सब प्रकारकी वस्तुओंको खाकर मल-मूत्र कर देता है लेकिन सर्वभक्षी होनेका परिणाम बहुत ही भयकर और बुरा होता है अर्थात् जब वह मुनि इस संसारको छोडता है तो उसे यमके अतिरिक्त और कोई भी उससे बात नहीं करता।

हे भूप! जिसने अपनी आत्माको निकम्मा बना रखा है अर्थात् उसको विषय रस पीनेका चसका लगा दिया है तो उस पापी मुनिके गलेको काटनेके लिये किसी शत्रुकी आवश्यकता नहीं है।

वह स्वयं अपने गलेको काट रहा है, जब उसका मरण समय आवेगा तो उसके जितने कुकर्म हैं सबके सब एक-एक करके उसके नेत्रके सामने आकर खड़े हो जायगे तब उसको अपनी भूलोंका ज्ञान होगा, लेकिन लाभ उधर भी न होगा केवल अपनी मूर्खतापर पछता-पछता कर रोना भर हाथ लगेगा, इसलिये पहले ही सजग हो जाना चाहिये।

हे राजन्! उस दुष्ट मुनिकी अन्तकालमें भी श्रमणकी रुचि व्यर्थ ही है जिसने अपने सम्पूर्ण जीवनमे आत्माको दुरात्मा बना रखा है क्योंकि वह दुष्टात्मा होनेपर भी अपनेको ज्ञानी और महात्मा समझता है अर्थात् यदि वह मोहको छोड़कर अपनेको दुष्ट समझता हुआ निन्दित मानता हुआ मरण समयमे आराधन करता तो उसे कुछ फल भी हो जाता, लेकिन वैसा करनेसे न उसे इस लोकका सुख मिला न परलोक ही का, जैसे धोबीका कुत्ता न घरका न घाटका वैसे ही वह कपटी मुनि भी दोनों लोकोंसे हाथ धो बैठता है, वह दूसरोंको स्वर्ग-सुख भोगते देखकर मन ही मन झींखता है और अपनेको धिक्कारता है।

हे भूप! इस प्रकार वह विषयी मुनि महाव्रतोंको लात मार करके मनमाना बनावटी आचार करता हुआ ससारमे अपनी बुराई सुनता हूआ उत्तम जिनों (वीतरागों) के सुन्दर धर्म-पथका विरोध करता है, परन्तु स्मरण रहे कि ऐसे कुकर्मका फल भी बड़ा कडुआ मिलता है अर्थात् उसे अन्तमे विषय-रसके कीचड़मे सनकर विना प्रयोजन शोक करना पड़ता है, सिर धुन-धुनकर पछताना

होता है, चीलकी भांति करुण स्वरोंसे: रो-रोकर विलाप करना पड़ता है।

हे वुद्धिमान राजन्! इन मेरी उत्तमोत्तम बातों और शिक्षाओं-को सुनकर अव आप कुशीलों और अधर्मोंके पथको छोड़ देंगे। मुझे ऐसा ही विश्वास है अर्थात् जितने वुरे कर्म हैं, झूठे आचार व्यवहार हैं, मिथ्या दंभ हैं उनसे अलग हो जायगे क्योंकि मेरे उपदेश कोरे ढकोसले नहीं, न उनमें कुछ लाग लपेटकी बातें हैं, वे वड़े गूढ ज्ञानोंसे गुणोंसे भरे हुए हैं अतः आप ज्ञानियों और सिद्ध तथा जिन महात्माओंके अच्छे पथसे चलेंगे?

हे राजन। अच्छे चाल चलन और ज्ञानसे युक्त होकर महा निर्ग्रंथके पथपर रहनेसे और जैसा कि पहले मैंने आचरण रूप सवसे वढ़कर संयमको वतलाया है उसका पालन करके और अपने सव प्रकारके कर्मोंका क्षय करके सकलप विकल्प हीन होकर त्रिविध दु खोंसे वचता हुआ मनुष्य उस अति विशाल और सर्वोत्तम मुक्ति स्थानको प्राप्त होता है जहा कि जिनोत्तम वीर लोग जा चुके हैं।

वड़े तेजस्वी जितेन्द्रिय महा तपोधन दृढ़ प्रतिज्ञ और वड़े ही यशवाले उन महा मुनि अनाथजीके मुखसे महा निर्ग्रन्थीय महा-श्रुतकी वडाई इस प्रकार विस्तारके साथ सुनकर राजा श्रेणिक वड़ा ही प्रसन्न हुआ और दोनों हाथोंको जोडकर वड़ी नम्रतासे वोला।

हे महात्मन्! जो कुछ मुझसे आपने कहा है वह वहुत ठीक

और सच है। निःसन्देह मेरे ऊपर आपकी बड़ी भारी कृपा हुई है। मेरी और संसारकी भलाईके लिये ही आपने अच्छे-अच्छे उपदेश दिये हैं जिनके बदलेमे मैं कुछ भी आप जैसे प्रभुवरकी सेवा नहीं कर सकता। यद्यपि महात्मा लोगोंका यह काम ही है कि अपने उपदेशोंका सदावर्त हरघड़ी चलाते रहे तथापि मैं आपसे कभी स्वप्नमे भी उऋण नहीं हो सकता।

हे महामुने। आपकी माता और पिता दोनों ही धन्य है वह कौशाम्बी नगरी धन्य है, जहा कि आप ऐसे योगिराज उत्पन्न हुए। प्रभो! आपका मनुष्य योनिमे प्रकट होना सफल हो गया और उभय लोकोंमें जितने पदार्थ सुखदायक है आपके लिये सभी सुलभ हो गये आप महा मुनिवर है। आपके दर्शनसे पाप दूर होता है। आप अपने कुटुम्बियोंके सहित सनाथ हो गये क्योंकि आप जिनोत्तमोंके पवित्र पथपर स्थित हैं।

हे संजय। आप अनाथोंके नाथ अशरणके शरण है, सब राजाओंके राजा और महाराजाओंके महाराज हैं, आप ज्ञानके सूर्य हैं, क्षमाके सागर हैं, हे महाभाग। मेरी आत्मा और देहके ऊपर, बालबच्चोंके ऊपर तथा सकल राजपाटके ऊपर आपका पूरा-पूरा अधिकार है जैसा चाहें उपदेश करें मुझे स्वीकृत है।

हे प्रभो। अज्ञानवश होकर पहले आपको मैंने पहिचाना नहीं था, इसी कारण अति तुच्छ और भद्दे प्रश्नोंको आपसे मैंने किया था, और तपस्याको छोड़कर भोग-विलास करनेकी मैंने आपको व्यर्थ सलाह भी दी थी, मैंने आपका ध्यान भंग कर

आपकी तपस्यामे विघ्न भी डाला था, इसलिये मैं अपराधी हूं। दण्ड के योग हूं तथापि प्रभो! मेरी सब भूलोंको भूल जाइये, साधु सरलचित्त होते हैं अतः क्षमादान दीजिये।

इस प्रकार राजाके अहङ्कारको चूर्ण हुआ देखकर और उसके विनीत वचनोंको सुनकर मुनिराज मुस्कराते हुए फिर ध्यानमग्न हो गये, राजा श्रेणिक भी मुनीन्द्रके उपदेश रूपी अमृतपानसे तृप्त होकर बडी भक्तिसे उनकी प्रदक्षिणा की, दण्डवत की, फिर रोमाञ्चित होता हुआ अपने हृदयमे वारस्वार अपने भाग्यको सराहता हुआ, घरको चला गया और विशुद्ध दर्शनका पाथेय पाकर सुविचार मग्न होकर विचरने लगा। वहा पहुंचकर मुनिसिंहके उपदेशोंकी आवृतिको सुनकर राजाके परिजन पुरजन भी धर्मानुरागी हो गये। यदि दोनोंको मुनिसिंह और राजासिंह कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

नाग देवता

इसके शरीरकी चमक फौलादकी तरह खूब काली है। आंखों-में इतना भयंकर और मृत्युकर विष है कि—जिसे देखकर ही प्राणीका शरीर विषमय होकर यमका अतिथि हो जाता है। जिस समय यह फुंफकारता है, तब आसपासके हरे-हरे घास और बड़े-बड़े वृक्ष तक जलबलकर ढेर हो जाते हैं। यही कारण है कि—मनुष्योंने इस रास्तेसे आना-जाना तक छोड़ दिया है। हजारों गारुड़ी और मन्त्रवादियोंने अपनी जानें गँवा दीं, पर चण्डकौशिक किसीके हाथ न आया। उस कराल मूर्त्तिके छेड़ने मात्रसे सैकड़ों स्त्रियोंकी चूड़िया नष्ट हो गईं थीं और वे अपने सौभाग्य जीवनसे हाथ धो बैठीं। उस वनका नाम सबने मिलकर यमलोक रख दिया है। आह! कितना भारी जंगल कि जिसे इसने जला-बलाकर मैदान बना दिया है। जहां पहले १८ भार वनस्पतिया उगतीं, फलतीं, फूलती थीं आज वही भूमि निर्जीव-सी हो गई है। विधवाओंकी आहोंकी तरह वहां सदा धुआं ही निकलता रहता है।

*　　　*　　　*　　　*

ग्वाल—पूज्यपाद महाराज! महाराज! आप इधर कहां पधारनेवाले हैं ?

तरुण तपस्वी—मैं यमलोक जा रहा हूं।

ग्वाल—भगवन। आपके पैरों पड़ता हूं। आप उधर न जाइयेगा, वहा तो भयकर काली पिरड रहता है। जिसने हजारों मनुष्यों और असख्य पशुओंका खून पिया है, तथा उन्हे मौतके घाट उतारा है। अतः मेरे आराध्य देव। उस ओर न जाइयेगा।

तरुण तपस्वी—भाई। मुझे मत रोक, मैं उधर अवश्य जाऊंगा, और मुझे तो अवश्य उस नागके बिल तक ही जाना है। क्योंकि आज मेरी समाधि उसके बिलपर ही जमेगी।

ग्वाल—(रो कर) मेरे हृदयके स्वामिन। मैं आपको रोक तो नहीं सकता, परन्तु उसके बिल तक जानेसे आपकी यह कुन्दन-सी काया कुम्हला जायगी और भारी असाता पहुचनेकी सम्भावना है। आपका यह पवित्र शरीर कुछ उस बलि-कुण्डमें आहुति आने योग्य नहीं है। वहाके लिये तो भगवन्। हमसे निकम्मे विषय-कीट ही बहुत हैं। आप तो ससारको आत्म-सुखी बनाने आये हैं। जगत्की त्रुटियोंकी पूर्ति कीजिये। जगत्मे ज्ञानका विकास कीजिये। पर इस कुमौत न मरियेगा।

तरुण तपस्वी—भाई। यह शरीर तो अनित्य, अशाश्वत और अपावन है। इसके सो जानेपर मौत सिरहाने बैठती है और जागते समय आखोंके सामने रहती है। पशुके चामकी सब वस्तुए काम आ जाती हैं। पर मनुष्यके सदाके लिये सो जानेपर उसकी कोई

बस्तु काम नहीं आती। मेरी जिन्दगी प्राणी मात्रकी भलाईके लिये है। अर्थात् सबको निवृतिपर लगाऊंगा। मेरा जीवन अज्ञान तममें भूले हुएको सत् मार्गपर लानेके लिये है। यदि मेरे शरीरकी बलिसे उसकी भूलका पर्दा टूट जाय तो मैं समझता हूं कि—यह सौदा मुझे सस्ता ही पड़ा हैं।

*　　*　　*　　*

साप बिलसे बाहर निकल आया। अपने सामने किसी तेजस्वी पुरुषकी आकृतिको देखकर दंग रह गया, पर फिर भी मारे क्रोधके वह कांप उठा, १०८ डिग्री गुस्सेका पारा चढ़ गया। आखें तो बांगरके गेहूंकी तरह लाल-लाल हो गईं। तरुण तपस्वीकी ओर रोषकी दृष्टिसे देखा, मगर उन्हे कुछ भी असर नहीं हुआ। उसने आगे बढ़कर फूक मारी और आशीविषका बादल फैला दिया। मगर उस ज्ञातनन्दन महावीरको उसका भी कुछ असर न हुआ। यह देख उसे कुछ भय हुआ कि—क्या बात है जो मेरी आखों और फूकारकी आग परशुरामकी परशुकी भांति ठंठी हो गई। भूखा सिंह वार खाली जानेपर जिस प्रकार खिज उठता है, उसी तरह खिजियाकर पूछका फटकार लगाता हुआ फिर फुंकार करता है, जिससे बिषैली गैसका धुंआ बन गया, और आकाश-मंडलको भी वर्षाके जलकी तरह गदला कर दिया। मगर भगवान् महावीरके वज्र कायको कुछ भी हानि न पहुंच सकी। अब तो आज्ञा उल्लंघन करनेपर जिस प्रकार राजा यमरूप हो जाता है,उसी प्रकार यमदंडकी तरह झपटकर प्रभुके अंगूठेमें बलपूर्वक जोरका डंक दिया। तथा

विषैले दात चुभोकर पोटलीका सारा ही विष उस व्रणमे उंडेलने लगा। जिससे महावीरका शरीर सोनेकी तरह चमक उठा। उनकी तेजस्वी किरणोंसे वह जङ्गल प्रकाशित हो गया। सापकी उस तेजके सामने आखें मिचने लगीं। एक दम दंग रह गया। हिमालयसे गगाकी तरह निकलती हुई रक्तकी धाराको पीने लगा। मानों कोई भूखा बालक माताका मीठा स्तन पान कर रहा है। रक्तपान करते-करते अचरजमे भर गया और रह-रह कर उनके मुंहकी ओर निहारने लगा। और सोचने लगा कि—इनके चेहेरेपर मेरे डकसे कुछ भी फेर न पड़ा। उसी तरह जंचा खड़ा है, जिसे देख २ कर मुझे लज्जा सी आने लगी है। इनकी दृष्टिमे भय और कातरताका नाम भी नहीं है। मगर मुझे देखते ही बड़े-बड़े पहलवानोंके कलेजे दहल उठते थे, डरके मारे कापकर सिहके सामने ऊंट-की तरह गर्दन झुकाकर गिर पडते थे। पर ये तो स्थाणुकी तरह अचल हैं। यह कौन है। यह कोई साधारण मनुष्य तो नहीं है। और इसके खूनमे दूध जैसा स्वाद क्यों है। मानो कामधेनु गऊके दूधमे मिश्री मिला दी है। अधिक क्या कहा जाय, अमृत जैसा आनन्द मिलता है। अगूठेसे मानो सुधाका सोत निकल पडा है। जिसको पीते-पीते जी ही नहीं अघाता। जी तो चाहता है साझ तक यह पयःपान इसी तरह करता रहू। मगर मेरा पेट क्यों फटा जाता है, उकलाई सी आने को है, कलेजा धडकता है, आह। मालूम होता है यह वस्तु मुझसे हजम होनेवाली नहीं। जी बिगड़ने लगा। मस्तक घूमने लगा, उसे अपने कियेका पछतावा होने लगा,

उसे प्रभुका चेहरा गूढ़ समस्या मालूम देने लगा। उसकी अक्लने कुछ काम नहीं किया। पर कुछ होश आनेपर उसकी दृष्टि प्रभुके मुख-मण्डलपर जमने लगी। प्रभुके होठ हिलकर शनैः-शनैः खुल गये इनकी वाणीका नाद गंगाके कलकल रवकी तरह गूजने लगा। शब्दकी मधुरिमा मधुसे भी अनन्त गुणी मीठी है। मानो यह मधुरता मेरे कानों तक आ गयी है। और परदेके क्षेत्रको अमृतकी तरह सींचकर तर कर दिया है। प्रभुकी बातें सबकी सब साफ और सीधी सादी हैं। सब कुछ समझमें आगया है। नाम बताकर मानों निधड़क कह रहे हैं कि चण्डकौशिक। ओ प्रिय नागराज। कुछ समझ! कुछ होशकर। कुछ अपने आपेमे आ और चेतकर। "अब भी समय है। मोहकी भ्रमणा दूरकर, यह मोह तुझसे आनादि कालसे चिमटा हुआ है। और तू इसी से कर्म मलमे व्याप्त हो रहा है। उस मोह विभ्रम को मिटाकर भेद विज्ञानका उदय कर क्योंकि तू महारुचिका निधान है, मेरी तरह तुझमे भी उजियाला प्रगट होगा। जो बाहरी धूमधामसे अलग है। वह द्वन्द्व दशासे निकालकर स्थिर भावको प्रधानता देनेवाला है, जिससे अपने ही विलासका सुमधुर स्वाद मिलने लगेगा। अपनेको सत्यार्थ मय जान। जिससे कर्मादि पुद्गलको अपना बताना छोड़ देगा, यह भेद विज्ञानकी क्रिया आत्मासे भिन्न जगत्का ज्ञान करायगी। जिस प्रकार अग्नि मिट्टी और पत्थरसे सुवर्णको अलग कर देता है।

चण्डकौशिक! जागृति पैदाकर। मेरी शिक्षापर ध्यान दे!

एक मुहूर्त मात्रमें मिथ्यात्व मोहका ध्वंस करनेके लिये ज्ञानके अशकी ज्योति जगमगा दे। और सोऽहं हंस :—की ध्वनिसे आत्माको खोजकर वाहर निकाल। और फिर उसके पवित्र लक्षणका भान पैदाकर। उसे पहचानकर प्रिय। ध्यान भी उसीका कर। और आजन्म पर्यन्त उसी रसको पियेजा! फिर देख कितना आनन्द आता है। इस रीतिसे सविकार रूपसे फैलनेवाले भव विलासको छोडकर उस मोहका अन्त कर! और अनन्तकाल तक जीवित रह।

चण्डकौशिक! मानों तू धोवीके घर भूलसे किसी अन्यका वस्त्र पहन आया हैं। मगर वस्त्रका स्वामी मिल गया है, वह कहता है कि यह वस्त्र तूने मेरा पहिना है। अतः अव इसकी वातपर वस्त्र का त्याग भाव उत्पन्न कर। जिसका है उसे दे डाल, क्योंकि वह तेरा नहीं है। अनादि कालके पुद्गल सयोगको समझ। शरीर तथा कर्मके सयोगी जीवकी अनादिको जान। अवतक उस सगके ममत्वसे विभावसे उलटे भावमे चल निकला था। मगर अव तो जड़ चेतनकी भिन्नताका ज्ञान पैदाकर। तथा अपने और परके स्वरूप को समझ। और पर रूपसे जुदा होते ही अपने स्वरूपका ग्रहण करने लग।"

* * * *

अरे रे। इन शव्दोंने मुझे मतवाला योगी वना दिया। शव्दों-का गुच्छा वनकर अन्तस्तलमे दीपकका-सा प्रद्योत करने लगा। जिसके प्रकाशमे यह दृढ़ निश्चय हो गया कि—यह आकृति तो

शायद कभी पहलेकी देखी हुई है। परन्तु स्मरण नहीं होता कि—कहा देखी। किस स्थानपर देखी। (जाति स्मरण ज्ञान होनेपर) ओ हो। यह स्वरूप तो मेरा ही है, अब मुझे स्मृति हो उठी, यह मैं ही हूं। यह संयमकी आकृति बनाई गई थी। परन्तु राग, द्वेष, कपायने उस विधि गतिको बिगाड़ दिया। जिसका दंड यह अबोध पशु योनि है। हाय! विपयकी गाठको घोल रहा हूं। भगवन्! जगत्से शत्रुता बाध बैठा, जिनका बारी-बारीसे बदला देना है। मुझे सबका कर्ज चुकाना है। जब खाल खिंचाई होगी तब याद आयगा कि—किसीकी जान लेना चैनकी बंशी बजाना नहीं है। भगवन्! अब तो अपने कियेका पछतावा होने लगा है। चिन्तित हूं कि इन लोगोंसे किस भाति निबटूगा। समुद्र पार जाना है पर नौका टूटी हुई है। लम्बा प्रवास करना है, पर खानेको कुछ पासमें खर्ची न हुई। दो कोमल भुजाओंसे समुद्र पार क्योंकर जाया जाय।

नागराजकी दो आखेंसे आसुओंकी धारा बहने लगीं। महावीर बोले कि नागराज! अब किनारे आया ही चाहता है, घबराओ मत। आत्माभिलाषा पूर्ण करो, समाधि (उपशान्त मार्ग) पर भावके आकृतिकी पहचान होती है। अतः उसीपर आकर जम जाओ। समयकी डोर पतंग-डोरकी तरह अब तक तो अपने ही हाथ है।

नागराज यह सुनते-सुनते शान्त हो गया, समाधि भावकी पराकाष्ठाको पहुंचने लगा। बिषको वम दिया और साथ-साथ कपायको भी। अनन्त अमृत उसके हाथ आ गया। मुंह बंबीमें रखकर

छिपा लिया। मानो अब वह अपने पापी मुंहको क्या कहकर दिखायगा, शरीरका सब भाग बाहर है। मगर मानुपोत्तरकी तरह सबका सब स्थिर। जीवित रहनेकी आस और मौतका डर अब जाता रहा। अब तो यमके ही दांत उखाड बाहर करना बाकी है।

* * * *

ग्वालोंने छिपकर इस धर्मकी लड़ाईको आद्यन्त देख लिया था। जिसमे एककी भारी हार हुई। मगर जीतनेवालेने भी सिरके साटे विजय लक्ष्मी पाई है। इन्होंने बस्तीमे आकर सबसे कह दिया कि—भगवान् ज्ञातपुत्र महावीर भगवान्की जय। आज उन्होंने चण्डकौशिकको जीतकर उसे अपना अनन्य भक्त बना लिया है। यह सब हमारी आखों देखी घटना है। हार जानेके कारण साप मुंह छिपाये पडा है। उसे अब बडी शर्म आने लगी है। विश्वास न हो तो जाकर देख सकते हो।

लोकोंका समुदाय सावनके बादलोंकी तरह दर्शनार्थ उमड़ पड़ा। आनकी आनमें सबने आकर प्रभुकी चरण वन्दना की, और बोले धन्य प्रभो। आपने जनताका एक भारी सकट दूर किया है। विभो। पापीको भी पापसे मुक्त किया और हमे भी जान-मालसे बाल बाल बचा लिया। बलीहारी। वारी जायँ अपने महावीर परमात्मापर। जो सबके सकट निवारणके लिये ही आया है। नाथ! आपने इसपर वह उपकार किया जो उपकार अन्धेपर वैद्यका होता है। आप स्वय तरण तारण हैं। आपने अपने धर्मके जहाजमें एक पापी सापको भी विरामके लिये स्थान दिया। नाथके नाथ!

आपके दर्बारमें जाति भेदको स्थान नहीं है। हम तो जातिके चक्रमें फँसे जा रहे थे, मगर आपने हमको हाथों हाथ उवारा है। तारक! आप हमारे सच्चे मार्ग दर्शक हैं। वन्द मार्गको आप खोल चुके हैं। आप ही इस मार्गको निर्भय वना रहे हैं। धर्म-चक्रिन! आपकी जय हो। आपकी जय! हमारे लिये सुखकर हुई। हमारे आत्मारूपीप्रभुके ज्ञान गर्भमे उत्कृष्ट साहसशीलता, सहिष्णुता, कृपा तथा मैत्री भाव आदि सवका सव छिपा हुआ था। वह आपके द्वारा सब व्यक्त हुआ है।

* * * *

इधर लोक धीरे-धीरे सापको आकर देखते हैं तो एकदम लम्ब-कायको देखकर डरते हैं और भागते है। इतनी कुशल वीतीकी उसका मुंह बिलमे है, जिससे अधिक भयकी जरूरत नहीं पड़ती थी। वहुतसे गुणके अनुमोदक हैं, वे सोचते हैं कि—समझनेका और प्रभु भक्तिका अधिकार प्राणी मात्रमे है। उसे भूला न समझो जो सन्ध्यामे घर आ जाये। मगर एक पक्ष तो उसपर रोष खाकर पत्थर बरसा रहा है। जिससे चोट लगनेपर कई जगहसे शरीर घायल हो गया है। कई यह कहनेवाले भी थे कि बेचारेको मार क्यों रहा है? निर्दय है? तब वह कहता है कि—अरे क्यों न मारूं इसने मेरा बेटा डस लिया था। मेरी स्त्री, मेरा बाप, मेरा यह मेरा वह डंस लिया। अतः अब हम इसके धर्मात्मा बननेपर ईंट' पत्थर, लकडीसे सेवा करते हैं। अपनी पूरी वीरताका परिचय दे रहे हैं। पर श्रद्धालुओंने तो यही कहा कि—नहीं, नहीं, अब तो भगवान

ज्ञातनन्दन महावीरका पुत्र है, और हमारा सहधर्मी बांधव है। अब यह शान्त है, इसकी सेवा करो। इसकी भक्ति करो और वात्सल्यता पैदा करो। यह कह किसीने मिठाई चढा दी, किसीने धीरेसे दूध डाल दिया। किसीने उसपर मधु और शर्वत ही डाल दिया जिसकी गधसे हजारों लाल कीड़ी आने लगीं। जिन्होंने उसका सारा शरीर १५ दिनमे छलनी बना डाला। मगर चण्डकौशिकने जरा-सी करवट न बदली। कितनी भारी शान्ति, कितनी उच्च कोटिकी सहनशीलता। तभी तो मरनेके बाद इसे आठवा स्वर्ग मिला। जिसकी स्मृति नाग-पंचमी अब भी उसे प्रति वर्ष स्मरण करा जाती है।

आपके दर्बारमें जाति भेदको स्थान नहीं है। हम तो जातिके चक्रमें फँसे जा रहे थे, मगर आपने हमको हाथों हाथ उबारा है। तारक! आप हमारे सच्चे मार्ग दर्शक हैं। बन्द मार्गको आप खोल चुके हैं। आप ही इस मार्गको निर्भय बना रहे हैं। धर्म-चक्रिन्! आपकी जय हो। आपकी जय! हमारे लिये सुखकर हुई। हमारे आत्मारूपीप्रभुके ज्ञान गर्भमें उत्कृष्ट साहसशीलता, सहिष्णुता, कृपा तथा मैत्री भाव आदि सबका सब छिपा हुआ था। वह आपके द्वारा सब व्यक्त हुआ है।

* * * *

इधर लोक धीरे-धीरे सापको आकर देखते है तो एकदम लम्ब-कायको देखकर डरते हैं और भागते है। इतनी कुशल बीतीकी उसका मुह बिलमें है, जिससे अधिक भयकी जरूरत नहीं पड़ती थी। बहुतसे गुणके अनुमोदक हैं, वे सोचते हैं कि—समझनेका और प्रभु भक्तिका अधिकार प्राणी मात्रमे है। उसे भूला न समझो जो सन्ध्यामे घर आ जाये। मगर एक पक्ष तो उसपर रोष खाकर पत्थर बरसा रहा है। जिससे चोट लगनेपर कई जगहसे शरीर घायल हो गया है। कई यह कहनेवाले भी थे कि बेचारेको मार क्यों रहा है? निर्दय है? तब वह कहता है कि—अरे क्यों न मारूं इसने मेरा बेटा डस लिया था! मेरी स्त्री, मेरा बाप, मेरा यह मेरा वह डंस लिया। अतः अब हम इसके धर्मात्मा बननेपर ईंट' पत्थर, लकड़ीसे सेवा करते हैं। अपनी पूरी वीरताका परिचय दे रहे है। पर श्रद्धालुओंने तो यही कहा कि—नहीं, नहीं, अब तो भगवान

ज्ञातनन्दन महावीरका पुत्र है, और हमारा सहधर्मी बाधव है। अब यह शान्त है, इसकी सेवा करो। इसकी भक्ति करो और वात्सल्यता पैदा करो। यह कह किसीने मिठाई चढा दी, किसीने धीरेसे दूध डाल दिया। किसीने उसपर मधु और शर्बत ही डाल दिया जिसकी गंधसे हजारों लाल कीड़ी आने लगीं। जिन्होंने उसका सारा शरीर १५ दिनमे छलनी बना डाला। मगर चण्डकौशिकने जरा-सी करवट न बदली। कितनी भारी शान्ति, कितनी ऊंच कोटिकी सहनशीलता। तभी तो मरनेके बाद इसे आठवा स्वर्ग मिला। जिसकी स्मृति नाग-पंचमी अब भी उसे प्रति वर्ष स्मरण करा जाती है।

अछूत और जैन

देहलीके किनारी बाजारको सब जानते हैं, जहा गोटा किनारी मिलता है, सिलमे, सितारे और धुएं का तथा पक्का माल सब लोक यहां ही से खरीदते हैं। अक्सर विवाह शादी के लिये इन आवश्यक वस्तुओंकी साध इसी बाजारमे पूरी होती है, बागरके तथा कुरुक्षेत्र भूमिके निवासी मनुष्य वरीकी तीयर यहींसे बनवा कर ले जाते हैं। यह जनानी पोशाक होती है, कपडा रेशमी होता है, ४०००० कीड़ोंको मारनेके बाद आध सेर रेशम तैयार होता है, इसी ही पाप वस्त्रकी यह घग्घरी होती है। जिस पर जरदोज़ी काम कराने यहां ही आना पड़ता है। ग्राम्य जनोंमें इस मालकी खपत रहनेके कारण बहुतसे लोगोने इसीकी दुकानें खोल ली है। परन्तु लाला मेहरचन्द्रजी जैन गोटेवालेकी दुकान इस बाजारमें पुरानी दुकान गिनी जाती है ये जैसे श्रावक हैं वैसे ही जबानके भी सच्चे और प्रतिष्टित गिने जाते हैं। इसीसे इनका माल खूब ही बिकता है, आपका मोल और तोल धर्मके काटेमे ८२

तोले पाव रत्तीकी उक्तिके अनुसार ठीक उतरता था। इसीलिये आप एक साखुनी (एक बात कहनेवाला) के नामसे प्रसिद्ध हो गये थे। दुकानपर इतनी भीड़ लग जाती थी कि इन्हें जरा सी फुर्सत भी नहीं मिलती थी। १६ घंटे आपकी दुकानमें वसन्तमें कोयलकी टुहुककी तरह रुपयोंकी मीठी ध्वनि सुनाई पड़ती थी। मन्दीका समय भी इन्हें कुछ नहीं कह सकता था। इसीसे अडोस-पडोस के दुकानदार इनसे जरा डाह खाने लग गये थे।

* * * *

होलीके समय दिल्लीमें बाहरसे आनेवाले देहातियोंकी वह दुर्गत बनाई जाती है जो गत बन्दरने बएकी की थी। इसीसे लाला वंशीलाल बांगरू भी इन होलीके रगीले भडुवोंसे बचते-छिपते किनारी बाजारमे लाला मेहरचन्दजीकी दुकानपर बडी ही कठिनाईसे आ सके। आते ही मुनीमजीसे पूछा कि—लालाजी कहा हैं? मुनीमजी बोले कि—आजकल बारहदरी (महावीर जैन भवन) में साधु महात्मा न होनेके कारण ऊपरके कमरेमें ही सामायिक (ध्यान) कर रहे हैं। लाला बशीलाल बागरू प्रसन्न होकर उनके दर्शन करनेके लिये ऊपरकी सीढ़ियोंपर धीरे-धीरे चढ़ने लगे।

* * * *

ऊपरकी छतपर बराबरवाले पड़ौसीकी दीवारसे सीढी सटाकर कुछ कलमुहे सियार जैसे आदमी नीचे उतर आये हैं। इनमें किसीके हाथमे पिचकारी है, किसीने अपनी हथेलीपर लाल मिर्चोंका लेप

आपके दर्बारमें जाति भेदको स्थान नहीं है। हम तो जातिके चक्रमें फँसे जा रहे थे, मगर आपने हमको हाथों हाथ उबारा है। तारक! आप हमारे सच्चे मार्ग दर्शक हैं। बन्द मार्गको आप खोल चुके हैं। आप ही इस मार्गको निर्भय बना रहे हैं। धर्म-चक्रिन्! आपकी जय हो! आपकी जय! हमारे लिये सुखकर हुई। हमारे आत्मारूपीप्रभुके ज्ञान गर्भमे उत्कृष्ट साहसशीलता, सहिष्णुता, कृपा तथा मैत्री भाव आदि सबका सब छिपा हुआ था। वह आपके द्वारा सब व्यक्त हुआ है।

* * * *

इधर लोक धीरे-धीरे सापको आकर देखते हैं तो एकदम लम्ब-कायको देखकर डरते हैं और भागते है। इतनी कुशल बीतीकी उसका मुह बिलमें है, जिससे अधिक भयकी जरूरत नहीं पड़ती थी। बहुतसे गुणके अनुमोदक हैं, वे सोचते हैं कि—समझनेका और प्रभु भक्तिका अधिकार प्राणी मात्रमे है। उसे भूला न समझो जो सन्ध्यामे घर आ जाये। मगर एक पक्ष तो उसपर रोष खाकर पत्थर बरसा रहा है। जिससे चोट लगनेपर कई जगहसे शरीर घायल हो गया है। कई यह कहनेवाले भी थे कि बेचारेको मार क्यों रहा है? निर्दय है? तब वह कहता है कि—अरे क्यों न मारूं इसने मेरा बेटा डस लिया था। मेरी स्त्री, मेरा बाप, मेरा यह मेरा वह डंस लिया। अतः अब हम इसके धर्मात्मा बननेपर ईंट' पत्थर, लकड़ीसे सेवा करते हैं। अपनी पूरी वीरताका परिचय दे रहे हैं। पर श्रद्धालुओंने तो यही कहा कि—नहीं, नहीं, अब तो भगवान्

ज्ञातनन्दन महावीरका पुत्र है, और हमारा सहधर्मी बाधव है। अब यह शान्त है, इसकी सेवा करो। इसकी भक्ति करो और वात्सल्यता पैदा करो। यह कह किसीने मिठाई चढा दी, किसीने धीरेसे दूध डाल दिया। किसीने उसपर मधु और शर्बत ही डाल दिया जिसकी गंधसे हजारों लाल कीड़ी आने लगीं। जिन्होंने उसका सारा शरीर १५ दिनमे छलनी बना डाला। मगर चण्डकौशिकने जरा-सी करवट न बदली। कितनी भारी शान्ति, कितनी ऊच्च कोटिकी सहनशीलता। तभी तो मरनेके बाद इसे आठवा स्वर्ग मिला। जिसकी स्मृति नाग-पंचमी अब भी उसे प्रति वर्ष स्मरण करा जाती है।

अछूत और जैन

देहलीके किनारी बाजारको सब जानते हैं, जहा गोटा किनारी मिलता है, सिलमे, सितारे और धुएंका तथा पक्का माल सब लोक यहा ही से खरीदते हैं। अक्सर विवाह शादी के लिये इन आवश्यक वस्तुओंकी साध इसी बाजारमे पूरी होती है, बागरके तथा कुरुक्षेत्र भूमिके निवासी मनुष्य वरीकी तीयर यहींसे बनवा कर ले जाते हैं। यह जनानी पोशाक होती है, कपडा रेशमी होता है, ४०००० कीड़ोंको मारनेके बाद आध सेर रेशम तैयार होता है, इसी ही पाप वस्त्रकी यह घग्घरी होती है। जिस पर जरदोज़ी काम कराने यहां ही आना पड़ता है। ग्राम्य जनोंमे इस मालकी खपत रहनेके कारण बहुतसे लोगोंने इसीकी दुकानें खोल ली है। परन्तु लाला मेहरचन्द्रजी जैन गोटेवालेकी दुकान इस बाजारमें पुरानी दुकान गिनी जाती है ये जैसे श्रावक हैं वैसे ही जबानके भी सच्चे और प्रतिष्टित गिने जाते हैं। इसीसे इनका माल खूब ही बिकता है, आपका मोल और तोल धर्मके कांटेमे ५२

तोले पाव रत्तीकी उक्तिके अनुसार ठीक उतरता था। इसीलिये आप एक साखुनी (एक बात कहनेवाला) के नामसे प्रसिद्ध हो गये थे। दुकानपर इतनी भीड़ लग जाती थी कि इन्हें जरा सी फुर्सत भी नहीं मिलती थी। १६ घंटे आपकी दुकानमें बसन्तमे कोयलकी टुहुककी तरह रुपयोंकी मीठी ध्वनि सुनाई पड़ती थी। मन्दीका समय भी इन्हें कुछ नहीं कह सकता था। इसीसे अडोस-पड़ोस के दुकानदार इनसे जरा डाह खाने लग गये थे।

* * * *

होलीके समय दिल्लीमें बाहरसे आनेवाले देहातियोंकी वह दुर्गत बनाई जाती है जो गत बन्दरने बएकी की थी। इसीसे लाला बंशीलाल बागरू भी इन होलीके रगीले भडुवोंसे बचते-छिपते किनारी बाजारमें लाला मेहरचन्दजीकी दुकानपर बड़ी ही कठिनाईसे आ सके। आते ही मुनीमजीसे पूछा कि—लालाजी कहा हैं? मुनीमजी बोले कि—आजकल बारहदरी (महावीर जैन भवन) मे साधु महात्मा न होनेके कारण ऊपरके कमरेमें ही सामायिक (ध्यान) कर रहे हैं। लाला बशीलाल बागरू प्रसन्न होकर उनके दर्शन करनेके लिये ऊपरकी सीढ़ियोंपर धीरे-धीरे चढ़ने लगे।

* * * *

ऊपरकी छतपर बराबरवाले पडौसीकी दीवारसे सीढ़ी सटाकर कुछ कलमुहे सियार जैसे आदमी नीचे उतर आये हैं। इनमे किसीके हाथमें पिचकारी है, किसीने अपनी हथेलीपर लाल मिर्चोंका लेप

लगा रक्खा है। किसीने तवेकी स्याही तेलसे हाथोंमें चुपड़ ली है। सेठजीको कायोत्सर्ग (प्राणायाम) करते देख सब ठट्ठा मारकर खिलखिला उठे। जिनमेंसे एकने आगे बढ़कर अपने दोनों हाथोंको उनके मुंहपर मल दिया, जिससे हाथका स्याह रंग उनके मुहपर लग गया। एकने तड़ाकसे जूते मारना आरम्भ कर दिया। परन्तु नीच मटरूने तो लाल मिर्चोंकी भरी हुई एक अंगुलीपर थूक लगाकर उसे आखोंमें ही रगड़ दिया। पीछेसे क्षुद्र छदामीने डिबियामेंसे मह-रोलीकी पहाड़ीका काला बिच्छू मोचनेसे पकड़कर उनकी धोतीके अडूसेमे रख दिया। फिर क्या था उसने गुस्सा खाकर तड़ातड़ कई डक मार दिये जिससे उनके शरीरमें दुःसह्य वेदना होने लगी। परन्तु लालाजीकी दृष्टि इन परिषहोंके पड़नेपर भी नाककी दडीपर ही जमी रही।

लाला वंशीलाल बांगरू ऊपर चढ़ते-चढ़ते इस काण्डको पूर्णतया देख चुके थे। फिर क्या था मारे गुस्सेके काबूसे बाहर हो गये। जेबसे कुछ निकालकर तुरत फायर करनेको थे ही कि उन्हें किसीने आकर पीछेसे पकड़ लिया, यह गुण्डा पार्टीभी भयभीत होकर ९-२-११ हो गयी, और उसी दम वह स्थान फिर शान्तिपूर्ण हो गया।

* * *

बिच्छू उग्र और विषैला था, डक भी कई जगह मारे थे। परन्तु सेठजीके नाकपर वल तक न पड़ा, भृकुटी उसी तरह सौम्य और सम थी। वंशीलाल इस उत्कृष्ट सहिष्णुता और समभावनाकी

साक्षात् जीवित मूर्तिको देखकर अवाक् सा रह गया मन ही मन श्रद्धाके फूल चढाकर प्रशसा करता हुआ सोचने लगा कि—यदि इतनी हँसी दिल्लगी कोई मुझसे कर जाय तो सा· ······ · न देता। परन्तु धन्य मेहेरचन्द। आपने अपने स्थायी भाव और गम्भीर शान्तिसे मेरे कलुपित भावोंको भी बदल दिया, और वह भी सदाके लिये। आपका आदर्शमय तथा शान्त जीवन मुझ पामरके काम भी आ गया। अब मैं भी आपकी-सी पवित्र और निर्दोष सामायिक मौन रहकर नित्यप्रति किया करूंगा। अब लोक दिखावा न करूंगा, और आपकी तरह समताको खूब निबाहूंगा।

* * * *

नौ बजते-बजते सेठजीका सामायिक काल समाप्त हो गया। नहा-धोकर खादीके साफ कपड़े पहिनकर कोठीकी गद्दीमें आ बैठे। मुनीमजी बिच्छूजडीका लेप लगा चुका है। लाला बंशीलालने कुछ माल खरीद कर लिया। तथा २०००) रुपया नकद गिनकर फुर्सत पाई। इतनेमें माल पैक हो गया। धकेलमें लदवाकर स्टेशनपर भिजवा दिया, और अब दोनों सहधर्मी बन्धु कुछ धर्मगोष्ठी कर ही रहे थे कि—इतनेमें एक मेहतरने आकर सेठजीको आदाब अर्ज किया। और चबूतरेके नीचे हटकर खड़ा हो गया।

सेठजी—कहो भाई रचेंद्रू चौधरी। क्या चाहते हो?

रचेंद्रू—सर्कार आपसे कुछ मागनेके लिये आया हू।

सेठजी—कहो तो मालुम पड़े, सबकी योग्य सेवा करनेके लिये मैं तो सदैव तैयार हू।

यह सुनकर लाला वंशीलाल वागरू तो क्रोधमे जल वल कर राखसा हुआ जा रहा था। उसके नथने फूल गये आखें सॅदूरकी तरह लाल हो गई। सारे शरीरमे पसीना-पसीना होगया। रह रहकर जीमे यह आता था कि—इस वदमाशको नालीमे दे मारू, और इतने जूते लगाऊ कि—पाजीकी ठठरी गजी हो जाय। यह क्या वकता है जैसे छोटा मुँह वडी वात हो। परन्तु लालाजीकी शर्मने उसे ऐसा करनेसे रोक दिया, और सेठजी उस भगीसे यह वोले कि—देवानुप्रिय। मुझे अपनी कला किसी न किसीको तो अवश्य सौंप ही देनी है, परन्तु तुम्हारा लड़का भी औरोकी तरह सुन्दर-धर्मात्मा, सुन्दर-युवक और मनुष्य ही है। तव मुझे उसके लिये कव ना ही हो सकती है। किसी भी प्राणीके साथ घृणाका वर्ताव करना एक समदर्शी श्रावकके लिये तो कभी शोभा नहीं देता।

पर मुझे सच पूछो तो अपनी कला सौप देनेमे कतई इन्कार भी नहीं है। यदि आसपासके मेरे ये पडौसी वन्धु और मेरी जातिके सहवन्धु इसमे कुछ भी वाधक न हों तो मैं इस आदर्श लग्नको अभी कर डालू। पर क्या करू मै जिस जातिमे रहता हू उनका वनाया हुआ नियम पालन मुझे वलात्कार करना पड़ता है, और इस २० वीं शताब्दीमे यह अनिवार्य-सा हो गया है। भगवान् महावीरकी आज्ञाओंको भुलाकर वे ससारकी देखा-देखी कर रहे है। प्रभु तो यही कहते है कि "जगत्की देखा-देखी मत करो।" ससारके नीचे आज जैनोंका भी हाथ दवा पड़ा है पर यदि सजातीय भाई आज ही जाति भेद दूर कर दें तो प्रसन्नता मैं तो सवसे पहले तेरी आशा पूरी करूं।

खचेड़ू अपना-सा मुँह लेकर चला गया। परन्तु वंशीलालपर इसका बड़ा ही प्रभाव पड़ा। सेठकी अभेद वृत्तिपर उसे वडी प्रसन्नता हुई, और वोला कि—यह सारा वोझ उन गुण्डोंपर ही पड़ गया है जिन्होंने इसे सिखाकर भेजा है और जो जाति पातिके दास हैं।

* * * *

मस्तक मूंडन करनेसे साधु नहीं हो जाता, ॐकारका उच्चारण करनेसे कोई ब्राह्मण नहीं बनता। अरण्य वाससे मुनि और भगवे वस्त्र धारण करनेसे तपस्वी नहीं होता।

समभावसे साधु होता है, ब्रह्मचर्य पालन करनेसे ब्राह्मण होता है। इसी प्रकार ज्ञान हो तो मुनि तथा तापस कहलाता है।

—ज्ञातृपुत्र महावीर भगवान।

चावल-मूंग

मेवात देशको दो भागोंमे अलग करनेवाले काले पहाडको सब जानते है। इसकी ऊँचाईका मेवोको अव भी गर्व है। यद्यपि अपनेको ये मेव हिन्दुओंकी लापरवाहीसे कट्टरसे कट्टर मुसलमान समझने लगे हैं, तथापि इनके नाम संस्कार और विवाह सस्कारमे अव भी दियासलाईमे आगकी तरह हिन्दुत्व छिपा पडा है। इस नगराजके योगियोंकी कृपा इन अवोध मेवोंपर अव कुछ कम रह गई है। जिससे ये अव रंग वदलने लगे है। यहापर दूर-दूरसे सावन मासमे वैद्य लोक आते हैं और कच्ची औपधोंपर अपना चिह्न वना जाते हैं, और पौप माघमे आकर अपनी उन जड़ियोंको ले जाते हैं। पर इन वेचारोंको मधुके अतिरिक्त और कुछ नही मिलता। तिजारेके रास्तेसे इसी पहाड़मेसे एक झरना निकलता है। अनुमानत एक-डेढ मीलपर जाकर जमीदोज हो जाता है। इसी झरनेके नामके पीछे अपना नाम लगाकर फिरोजशाहने वहा झिरकाफिरोज़पुर शहर वसाया था। अव यहा तहसील है, गुड़गाव

जिलेके आश्रयतले है। मगर लोक यहा वेरोजगार हैं इसीसे यह नगर उजाड-सा लगता है, और इसका आर्थिक सौभाग्य विधवा स्त्रीकी भाति नष्ट-सा हो गया है। मगर अबसे १०० वर्ष पहले हरकटराय वरसे यह नगरी सधवा कहलाती थी।

*   *   *   *

हरकंटकरायकी हवेली बनकर तैयार है। लगभग एक लाख रुपया व्यय हुआ होगा। पर सेठके मनको अभी सन्तोष नहीं हुआ। उन्हे यही ध्यान आता है कि मेरी बैठक तो पक्की बन गई पर इससे क्या लाभ हुआ। मेरे सजातीय भाईओंको तो खाने तकके लाले पड़ रहे हैं, पर यदि वे अपनी दुःखकी पुकार श्री जीसे करें तब भी ठीक नहीं बनता। क्योंकि श्रीजी तो वीतराग हैं, वीत-रागताके नाते वे क्या कभी किसीको पौद्गलिक सुख थोड़े ही दे सकते हैं। कारण सरागी जन वीतरागसे सरागी प्रीति द्वारा इच्छा पूर्ण नहीं कर पायगा। उनसे तो वीतरागी प्रीति जोड़ें तब ही जोड़ी ठीक बन सकती है। परन्तु मैं तो अपने सहधर्मी भाइयोंकी दरिद्रताकी बेड़िया काट सकता हूं। क्योंकि मेरे पास असीम सम्पत्तिका साधन है। इसको अधिकाधिक वितरण करनेपर भी अपने जीवनमे उसका अन्त नहीं पा सकता। क्योंकि कुएंसे पानी चाहे जितना निकाला जाय पर कुँआ खाली नहीं होता। इसी प्रकार धनको सुकृतमे लगाया जाय तब भी समाप्त न होगा। अतः इसका मोह बुद्धिसे संचय कर रखना भला नहीं है। क्योंकि जगली कुएँका पानी न निकलनेपर वह सड़ जाता है और उसमें विषैली

गस हो जाती है। अतः जैन और लक्ष्मीपात्र होकर दूसरी ओर अपने भाइयोंकी तथा देशवासियोंकी दुःखद दशा सहन नहीं कर सकता। आज ही सत्रागार खुलवा देता हू। जिससे अन्न और वस्त्रका दुखिया कोई न रह पाये, और यह सब कुछ करते हुए उसे कुछ भी श्रम न पड़ा।

* * * *

भयावह अन्धकारसे रात भरपूर है। कई घरोंसे कराहनेकी आवाज़ आ रही है। मानव-पुत्रोंके पेटमे जाठरी आग लकाकी-सी आग निकल कर उन्हें जला रही है। तीन-तीन दिन तकके उपवास निर्जला एकादशी और सवत्सरीकी तरह अपने आप हो जाते हैं। लोगोंके घरोंमे निर्जला एकादशी स्थान पाकर बस गई है। पर ये सदाव्रतका अन्न लेने नहीं जाते। कारण उनकी मध्यम स्थिति है। इज्जत-आवरूवाले हैं, सफेद कपड़े पहनते हैं अवश्य, परन्तु पेट खाली है। न माग सकते है, न श्रमिक होकर श्रम ही कर सकते हैं। मुफ्तका अन्न लेकर खानेमे पूरी लाज लगती है। इस बारके दुर्भिक्षने इन्हें पूरा निढाल बना दिया है। बेचारे जगलसे कुछ शाक-पात लाकर खा लेते हैं और अधपेट भूखे पड़े रहते हैं। इस यन्त्रणाको बूढ़ा आदमी चाहे सह सकता है, परन्तु नन्हे और सुकुमार बालकोंको यह ज्वाला कब जीवित रख सकती है। क्योंकि वस्तु जितनी अधिक सुकोमल होती है अग्नि उसे जल्दी ही भस्म कर डालती है। इसीसे न० ६ की गलीमेंसे रोनेकी आवाज आ रही है। जिसे सुनकर पत्थर जैसा दिल भी

पिघल जाता है। इस रोदनने गलीवालोंकी उदराग्निको और भी कराल बना डाला।

*　　　*　　　*　　　*

"मां! अरी ओ मां। कल कुछ मेरे लिये खानेका प्रबन्ध करेगी या नहीं। सच बता दे। तीन दिनसे बहकाती ही रहती है। कल यदि जलपान भी न दिया तो याद रख सवेरे ही प्राण दे दूंगा।"

"बेटे। मेरी जान। सबर कर। तेरे पिता दिल्ली गये हैं। कहीं न कहीं नौकरी अवश्य लग गई होगी। एक मास पूरा होने आया है। आशा ही नहीं बल्कि ठीक कहती हूं कि—कलकी डाकसे कुछ रुपया अवश्य आवेगा, फिर दिनमें तीन बार जलपान कराऊंगी मेरे लाल। पर अधीर न हो मेरे बेटे। जरा सबर सन्तोष कर सबरका धन गरीबोंका धन है। वे इसके ही सहारे सुखसे दिन काटकर जीवित रह सकते हैं।"

"मा। मैं सच कहता हूं सबर करनेसे भूख नहीं मिटती। सबर करते-करते आज तीसरा दिन बीता रहा हू। अन्न और दातके अन्दर वैर पड़ जानेसे दोनों रूठे बैठे है। भला इस सबरका भी कभी अन्त आवेगा। देखती हो मा। इन हवेलिओंसे बराबर तीनों समय धुआ उठा करता है। हलवा पूरी बननेकी गन्ध आती रहती है। मगर हमसे बदनसीबोंके घरोंको आग जलाती भी नहीं जिससे रोजका संकट तो मिट जाता। मा। ये कहनेको तो दिगम्बर हैं मगर इनके घरोंमे लक्ष्मीका ओर छोर नहीं। ये मौज-मजे उडायें और हमे एक-एक दानेकी सासत। क्या हम

उनके विरादर भाई नहीं हैं ? क्या उन्हे हमारा तरस नहीं आता ? हाय रोटी ! भूखा मरा जा रहा हू ! मेरी अच्छी अम्मा ! मैं भूखसे मरा !

* * * *

ओ मनसुखा ! जरा दे नवरकी गलीसे वुधसेनको तो वुला ला।

मनसुखा 'जो हुकुम' कहकर वुधसेनको कन्धेपर रखकर ले आया। लड़का कन्धेसे उतर कर एक तरफ प्रणाम करके वेसुध हो गया। मगर उसे जल्दी ही मुँहपर गुलाव छिड़ककर होश दिलाया, कुछ गर्म दूध पिलाया लडकेको कुछ सुध आई और सचेत हुआ तव हरकठरायने जेवसे १००) रुपया निकाल कर वुधसेनको देते हुए कहा कि—ये रुपये हमारे जुगल विहारी मुनीमके हाथ तुम्हारे वापने भेजे हैं। अतः ले जाओ, और यह भी कहला भेजा है कि १००) रुपया मासिक वेतनपर जगलीमल केदारनाथके यहा मुनीम हो गया हू। अत. चिन्ता न करना। जिस वस्तुकी इच्छा हो सेठ-जीकी दुकानसे ले जाया करना, मैं १००) रुपया इन्हींकी दुकानपर भेजा करूगा। महीनेकी अन्तकी तिथिको उनसे ले जाया करना। अत. अपने पिताके आदेशके अनुसार १००) रुपया प्रति पूर्णिमाको ले जाया करना समझे। यह कहकर १००) रुपया देकर वुधसेनको विदा किया। रुपया पाते ही मानो शरीरमे विजली-सी दौड गई। और वह हसते-हॅसते घरकी ओर भाग गया।

रातके नौ बजे हैं, सामायिक पूर्ण हो गई है, वे स्वयं अपने एक गूंगे नौकरके साथ नित्यके नियमानुसार कपड़े और रुपयेकी थैली रोज लिवा ले जाते हैं, प्रत्येक नागरिकके घरमें रुपयों और मोहरोंकी पुडियायें इस ढंगसे डलवा देते हैं कि—जिससे किसीको उनका परिचय ज्ञात न हो, तथा किसीके घर छींट, लहरिया, खादी, मलमल, कम्बल आदि अनेक भातिके थान डाल देते हैं। यह सब काम १२ बजनेके बाद पूरा करके फिर अपने शयनागारमें आकर विश्राम लेते हैं। यह उनकी नित्यकी चर्या हो गई थी। इतना कुछ किये विना उन्हे चैन तक न पड़ता था।

सवेरा होते ही गली-महल्लेवाले आपसमे यह बातें करते कि—कोई देवता फ़िरका फिरोजपुर पर प्रसन्न हो गया है, जो हमारे घरोंमे रुपयों, मोहरों और कपड़ोंकी वर्षा सदैव कर जाता है। धन्य भारत देव। तुम इस समय अभेदरूपसे हिन्दू-मुस्लिम नर देवोंकी गुप्त सेवा बजा रहे हो। अतः तुम ईश्वर भी हो और खुदा भी, तथा साथ-साथ कर्म फल भी हो।

इसी खुदा और ईश्वर तथा कर्मने हमारे शरीरमे जान डाली है। वर्ना इस दुर्भिक्षसे तड़पकर कभी के मर गये होते।

× × × ×

आतू नाईराजा सबके घरोंमे बुलौआ दे आया है। नियत समय-पर सब लोक सेठ हरकठराय दिगम्बर जैनके भव्य भवनमें आकर उपस्थित हो गये हैं। आज घरका चौक मानव मेदनीसे खचाखच भर गया है। तिल धरनेको भी जगह नहीं है। सब लोगोंके
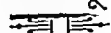
एकत्र हो जानेपर एक वृद्ध पुरुषने नतमस्तक होकर पूछा कि—सेठ। आपने आज हम सबको किसलिये बुलवाया है। आज्ञा कीजिये, हम सब वही कार्य जी-जानसे करनेको तैयार हैं।

सेठ हरकठरायने पचायतके सन्मुख हाथ जोड़कर कहा कि—पिछले दिनों मूग और चावलके कई बोरे मगवाये थे, मगर चावलकी बोरियोंके ऊपर मूगकी बोरिया न जाने किस प्रकार टूट गई या चूहोंने कुतर डालीं, जिससे मूग चावल एकमेक हो गये हैं। अतः यदि एक-एक थाली मूग चावल आपलोग अलग करदें तो सब माल अलग-अलग हो जाय और आपका बड़ा आभार मानू।

इसपर सबने एक स्वरमें कहा कि इस वर्ष दुर्भिक्षके कारण बाजारमे कुछ काम भी नहीं है। और इसके लिये हमारा कुछ भी हर्जा न होगा। बल्कि सब मिलकर बैठेंगे तो जी भी बहलेगा।

सबके हाथोंमे एक एक थाल मूग चावलका दिया गया, ये सब थोडी ही देरमे अपना काम पता देते हैं। काम करते समय बातोंकी खूब झडीसी लगी रहती है। सेठ छुपकर सब कुछ सुन लेता है। सबकी आर्थिक स्थितिका पता मिल गया है। साथ-साथ सबकी यथोचित आवश्यकतायें भी जान ली गई। ठीक १० बजते ही सब उठ खड़े होते हैं। सेठ सबका मार्ग रोककर विनयसे नत होकर कहता है कि—कल देहलीसे एक बडल खुशबूदार हिंग्वाष्टक चूर्णका डब्बा आया है। अत· आप भी चूर्ण लेते जाइये। इसके खानेसे बालकोंमे बडी फुर्ति रहती है। खाना हजम होता है। पेटका रोग मिट जाता है। जी नहीं मिचलाता। पेटका दर्द शान्त हो जाता

है। यह कह १-१ पुड़िया सबकी जेबोंमें रख दीं। बाहर आनेपर लोग क्या देखते हैं कि—सेठकी माताजी आज लड्डुओं की प्रभावना कर रही है। सबने माताके हाथसे एक-एक मोदक भी लिया। घर आकर क्या देखते हैं कि—पुड़ियाओंसे निकलते हैं मोती और मोदकोंसे मुहरें, आज इस दरिद्र भारतको ऐसे-ऐसे लाखों हरकंटरायकी भारी आवश्यकता है।

कसौटी

जंगलमे सन्ध्या समय हो गया था, और उसकी छाया चारों ओर खड़े हुए वृक्षोंपर जम रही थी। कलरव करते हुए पक्षी अपने घोंसलोंकी ओर पीछे लौटे आ रहे थे। सूर्यदेवकी किरणें पश्चिमगिरिकी भेंट करने तैयार हो रही थीं, और उस जंगलमे चारों ओर शान्तिका साम्राज्य फैल रहा था।

ऐसे शान्त समयमे पद्मासन जमाकर अपने घुटनोंके ऊपर अपने दोनों हाथ रखकर मस्तक ऊंचा किये दृष्टिको नासिकाके अग्रभागपर स्थिर करते हुए जामुनके वृक्षकी छायामे बुद्धदेव समाधिमे मग्न थे।

उस कुँजमे शान्ति इतनी अधिक फैल रही थी, और वहाका वातावरण प्रेम-प्रवाहसे इतना अधिक विस्तृत था कि—यदि कोई अचानक अनजान नास्तिक पुरुष भी उस मार्गसे चला जाता हो तो भी अपनी अश्रद्धा छोड़कर भक्ति और पूज्य भावकी लगनसे भूमिपर अवश्य झुककर नम जाता।

विकरालसे विकराल प्राणी भी उस पवित्र महात्माके अद्भुत योग शक्तिके प्रबल प्रतापसे वहा आते ही अपना जातीय दुस्वभाव छोड़ देते और नम्र तथा विनीत हिरन जैसे बन जाते थे।

इतनेमें एक हिरणी जो अपने बच्चोंके साथ खेलती थी, और जिसने उस महात्माकी कक्षके नीचे आश्रय ले रक्खा था, उसने चमक कर ऊपरकी ओर नजर उठाकर देखा।

इसने दूरसे पैरोंकी कुछ आहट सुनी, किसीको उसने वहा शीघ्रता सूचक पैरोसे आते देखा, थोड़ी ही देरमें वहां एक टोली आ गई। उस टोलीका नायक एक युवक था। जो देखनेमें और शक्ल-सूरतसे गेहुंए रंगका था। परन्तु उसकी मुद्रा प्रतापशालिनी थी। उसने जरदोजी पोशाक पहन रक्खी थी, और एक बहुमूल्य माला उसके गलेमें अजब शोभा दे रही थी।

अपने साथ आये हुए लोक समुदायको एक स्थलपर खड़े रहनेकी आज्ञा देकर वह स्वय बुद्धदेवकी ओर आ रहा था। जब वह महात्माकी भव्य, तेजस्वी और शान्त मूर्त्तिके सामने आया, और अत्यन्त भक्तिके भावसे उस तरुण तपस्वीके पैरोंमें गिर पड़ा। फिर वह खडा हो गया और नीची निगाह रखकर, दोनों हाथ मिलाकर वह पूर्ण भक्ति करता हुआ शान्त स्थितिमे कुछ समय तक उसी प्रकार खडा रहा।

बुद्धदेव कुछ भी न बोले, परन्तु उनकी निर्मल दृष्टिमे से प्रेमका प्रवाह वह रहा था।

अन्तमे युवक अधीर हो उठा और बोला कि—भगवन्!

महात्मन्। आपके लिये भाव पूर्वक नमस्कार! कंचन नामक दूर-वर्ती देशसे मैं यहा आया हूं। मेरा नाम चन्द्रसिंह है। मैं राज-पुत्र हू, राज्यका अधिकारी हूं आपकी सेवामे कुछ मागने आया हू, भगवन्! जबसे आपका नाम सुना है तबसे मैंने जरासा भी आराम नहीं लिया है। एव मेरे चित्तको शान्ति भी नहीं आती, मेरे राज्य, महल, कोप मुझे अब सुखी नहीं कर सकते। मेरे मित्र एव मेरी स्त्रियोंसे मेरे मन और इन्द्रियोंको सन्तोप नहीं, अब तो मैं उच्च जीवन वितानेके लिये आतुर हू। कृपालो! मुझे अपने एक पामर शिष्यके रूपमे स्वीकार करें। मेरे जैसा सच्चा भक्त आपको भाग्यसे ही मिल रहा है।

बुद्धदेव अपनी शान्तिको संभाले हुए थे, दयापूर्ण दृष्टि उस युवककी ओर फेर दी। परन्तु मुँहसे एक अक्षर भी नहीं कहा। चन्द्रसिंहने अपनी करुण कहानी अगाडी चलाई—

देव! गुरो! आप मुझे कुछ भी उत्तर नहीं दे रहे हो? क्या मैं इस अधिकारका पात्र नहीं? प्रभो! मैंने अपनी बाल्या-वस्थासे ही निष्कलंक जीवन विताया है, सद्गुरुका सेवन किया है। धर्मके नियमानुसार वर्ताव किया है, और धर्मशास्त्रोंका दिलसे परिश्रमके साथ अभ्यास किया है। क्या इतनेपर भी प्रभो! आपका ध्यान मेरी ओर नहीं खिंचा? क्या मैं आपका शिष्य नहीं हो सकता?

'न' मात्र इतना ही उत्तर मिला।

देव! भदन्त! तव आपही कहिये, मैं आपकी इच्छाका

अनुसरण क्योंकर करूंगा। यह जन सब कुछ सहनेको तैयार है, शिष्यत्वको पानेके लिये मुझे अब अगाड़ी क्या करना चाहिये वही बतायें तो बड़ी कृपा हो।

'खोज कर। तुझे मिलेगा'

'किसकी खोज करू' युवकने उदासीकी आवाजमें कहा।

गौतम बुद्धने कुछ भी जवाब नहीं दिया, तथापि वह युवक बोलता ही रहा, 'तथास्तु'। मैं तलाश करूंगा, आपका आशय मुझे कसौटीपर लगनेसे तो नहीं है ?

'कदाचित् हो'

'आपसे फिर कब आकर मिल सकूगा ?

'चतुर्मास बीतनेपर सातमें मासमें'

चन्द्रसिंहने मस्तक नवा दिया, मुंहसे कुछ न बोल सका और जमीनपर सो गया, और वह इस स्थितिमें बहुत समय तक पड़ा रहा। कुछ समयके अनन्तर वह धीरे-धीरे उठ बैठा। परन्तु उसकी बोलती बंद थी, और वह हिली हुई हिरनी उस महात्माकी गोदमे मस्तक रखकर अपने बच्चोंके पास ऊंघ गई।

बुद्धदेव फिर समाधि मग्न हो गये।

* * * *

वर्षा ऋतु आकर चली गयी, बातकी बातमें सात मास बीत गये, और उसी जामुनके वृक्षके नीचे उसी कुंजमें बुद्धदेव बैठे थे, सूर्य अस्त होनेकी तैयारीमें था, आकाशमें बादलोंकी कुछ रेखाएं दीख पड़ती थी, और किसी नये तूफानकी निशानीके रूपमें

परिणत हो रही थी। हवा भी खूब भारी हो चली थी, और घोट भी बहुत हो चुका था, मगर आज उसका अन्त है।

उस जंगलमे कोई भारी तूफान आनेवाला है, इस विचारसे वनके प्राणी उस महात्माके समीप आश्रय लेने दौड़े आ रहे थे। पासके उगे हुए वृक्षोंपर पक्षियोंके गोलके गोल कलरव कर रहे हैं, और एक छोटा-सा वाघका बच्चा उस वुद्धदेवके पैरोंमे खेल रहा था और मानो उसे आनेवाली तूफानकी कुछ भी खवर न थी, इसीसे निर्भय पडा था। सवसे पहले चक्करदार गूजनेवाला वायु आया, इसके पश्चात् वादलोंकी कड़क और विजलीकी चमकके साथ मूसलधारसे पुष्कलावर्त मेघ पड़ने लगा। सवके सब पक्षी वृक्षोंपर चढ़ गये, भारी वर्षा हुई, मगर उस जामुनके वृक्षपर उस भारी मेघका जरा-सा भी असर न हुआ। उस वुद्धदेवपर पानीकी एक भी वूद न पड़ी।

वर्षाका तूफान वहुत देर तक चला, परन्तु दृढ इच्छावाला वह पुरुष किञ्चित् मात्र भी अपने प्रयाससे विचलित न हुआ। संध्या समय होते ही चन्द्रसिंह वहीं वुद्धदेवके पास आ पहुंचा, तथा वहा आते ही उसके उद्गार इस प्रकार आपसे आप निकल पड़े।

भदन्त। मैं इस समयके लिये वड़ी ही अधीरताके साथ राह देख रहा था। अतः मैं अव यथा समय आ पहुंचा हू, और वह समय भी शायद आ गया है। प्रातःकालके वाद सन्ध्याकाल और सायकालके अनन्तर प्रातःकालका चक्र चल रहा है। अव वह निर्धारित समय आ गया है। आपकी वताई हुई कसौटीमे मैं

बीस विश्वे सफल हुआ हूं। मैंने अब तक शुद्ध जीवन ही विताया है। सब प्रकारके भोग विलास और वैभवका मैंने निषेध कर दिया है। इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर मैंने नितान्त उदासीन भाव रक्खा है। मेरे महलके वैभव और सुखकी ओर भी मैंने लक्ष्य नहीं दिया। मेरा समय केवल एकान्तमे लम्बे समय तक ध्यान करनेमे ही गया है। अब मुझमे किसी प्रकारकी अशुद्धि नहीं है। विभो! इस समय तो मुझे अपने शिष्यके रूपमे स्वीकार करोगे?

'न'

चन्द्रसिंह यह सुनकर एकदम घबरा गया, उसके मनमे भयंकर खेद व्याप्त हो गया, और अपने रूमालसे मुख छिपा लिया। उसकी आखोंमे उस समय आसू भर आये थे, और बहुत देर तक एक शब्द भी मुँहसे न बोल सका, परन्तु धीरतासे काम लेकर कम्पित स्वरमें इस तरह बोलना आरम्भ किया।

महात्मन्! क्या आप अपने इस तुच्छ सेवकसे न बोलोगे? कृपालो! क्या नकार कहनेका कुछ कारण न बताओगे?

बुद्धदेव समाधिसे अभी ही उठे थे, चन्द्रसिंहको देखकर चीता उसे घुरकने लगा था। उसने अपने प्रेममय हाथके सकेतसे उसे शात किया, मेघकी गर्जना बद हो चुकी थी, और बुद्धदेवके मुखसे निकलनेवाले शब्दोंको सुननेके लिये उस समय पवन भी शात हो गया था। बुद्धदेवने मधुर शब्दोंमे उत्तर दिया।

"उत्तम राजकुमार! जिस कसौटीसे तुझे पार होना था, वह कसौटी वाह्य जगत्मे मिलनेवाली कसौटीके समान नहीं। मैंने

तुझे तेरे सुख वैभव और तेरी स्त्रीके त्यागनेके लिये कब कहा था। एव यतिके समान शरीरको कष्ट देकर रहनेका भी मेरा आदेश न था। जिस कसौटीसे तुझे पार होना था, वह कसौटी तेरे पूर्व जन्मके कितने ही कार्योंके परिणाम रूप स्वभावसे ही आई हुई है। अपने महलमें वापिस जाओ। और एक सद्गुणी मनुष्यके समान अपना जीवन बिताओ। अभी शिष्य बननेके योग्य नहीं हुआ है ?

उसके कपोलोंपरसे मारे शर्मके पसीना टपकने लगा, और बडी ही आतुरतासे चन्द्रसिंहने यह प्रश्न किया—

भगवन्। मैं किस कसौटीमे से निष्फल निमटा हूं, कृपा करके आप समझायँगे ? जिससे कि मुझे अधिक शर्म आयगी। तथापि मैं उससे जरा भी घबरानेवाला नहीं, नाथ। "मैं तो सच्चे अन्तःकरणसे प्रकाशकी शोधमे हू।"

बुद्धदेवने जवाब दिया कि—मैं तुझे वह भी बताऊंगा। पहली कसौटी झूठा कलक लगानेकी थी। हे उत्तम गुणवाले राजकुमार तेरे निजके महलमे ही तूने अपने पिताकी राजसभामे क्या वह अपराध नहीं किया था ? जिसका कि तुझपर ही अभियोग लगाया गया था। क्या वह विपय तुझे याद है ? लोगोंके मनमे इस विपयमे सत्य क्या है, जहा तक वह बराबर समझमें न आ जाय वहा तक वाट देखे विना ही, अथवा पहले किये हुए कर्मोंका परिणाम रूप यह कलक तुझपर आया हुआ है। अत· उसे धैर्यसे सहन करना चाहिये। यह विचार किये विना तू अपनी जातका

बचाव करनेके लिये कितना आतुर हो गया था। अपनी निर्दोषता सिद्ध करता था, और उन आरोप करनेवालोंके सामने कदम बढानेके लिये भी तू तैयार हो गया था। इस प्रकार तू पहली कसौटीसे निष्फल सिद्ध हो जाता है।

चन्द्रसिंह फीका पड़ गया, और सहसा बोल उठा कि—"हां यदि मैं उस आरोपका पात्र होता तो मैं उसे सहन कर सकता था, परन्तु मैं तो यह जानता था कि—मैं निर्दोष हूं।"

"श्रेष्ठ और सद्गुणी मनुष्यको अपनी निर्दोषता अवश्य सिद्ध करनी चाहिये, और अपना बचाव भी करना चाहिये। परन्तु जो 'मुमुक्षु' के मार्गमे प्रवेश करनेकी इच्छा रखता हो, तथा जो मेरा शिष्य होना चाहता हो, उसे अपने ऊपर होने वाले अन्याय और निन्दा होनेपर अपने बचावके लिये एक भी शब्द न कहकर उसे सुनना चाहिये। उसे कीर्तिका मुकुट पहननेके लिये एव अपकीर्तिका सेहरा पहननेके लिये समान रीतिसे उदासीन भाव रखकर तत्पर रहना चाहिये"

चन्द्रसिंहने मस्तक झुका दिया,

बुद्धदेवने अपना प्रवाह बढा दिया—

दूसरी कसौटीमे तेरी स्वार्थवृत्ति, तेरी अहंता, तेरा स्वार्थी राग तेरे वीचमे आ गया, तू अपने ही यक्ष नामके मित्रको अपनी जातकी सदृश ही चाहता था, तुम दोनोंमे गाढ़ संवंध था। इतनेमे भल्लिक नामक किसी पुरुपने तेरे पिताकी राजसभामे आकर पुकार की। उसे उस यक्षकी कारणवश आवश्यकता थी। अतः उसने यक्षका

हृदय अपनी ओर आकर्षित करना आरम्भ किया। उसकी मित्रताका सम्पादन करनेके लिये अत्यन्त आतुर था, इसीसे वह तुझे प्रीतिमे विघ्न कर्ता मालूम देने लगा। यक्षको तू यक्षके लिये न चाहता था। वल्कि यक्षके साथ की हुई मैत्रीसे मिलनेवाले आनन्दके लिये ही तू उसपर प्रीति रखता था। तुझे उसकी उपाधिके ऊपर अनुराग था, और इस रागके मूलको उखेडकर फैंकनेके वदले, और उस भल्लिक और यक्षके अन्दर वढनेवाली प्रीतिसे आनन्द माननेके स्थानपर तेरे हृदयमे एक प्रकारका भारी तूफान आ निकला। भल्लिकके मार्गमे यथाशक्य विघ्न डालनेके लिये तूने कुछ भी कसर न छोडी, और तेरे हृदयसे क्रोधका प्रवाह निकल कर भल्लिककी तरह वहने लगा जिसे तेरे लिये दूसरी निष्फलताका कारण कहना चाहिये।

चन्द्रसिंहने वड़े वेगसे उत्तर दिया—

"मैं यह जानता था कि—भल्लिक स्वार्थके लिये यक्षकी प्रीतिकी शोधमे है, अपने मित्रको चेतावनी देना और भल्लिकके जालसे उसका वचाव करना मेरा कर्तव्य न था?"

क्या तुझे यह विश्वास है कि भल्लिकका स्वार्थी प्रेम समय निकलनेपर शुद्ध नहीं हो सकता था? वह प्रीति किसी दिन सच्चे अन्त करणकी न होती? क्या निश्चय वाध कर ठीक कह सकते हो? राजकुमार। अपनी कीर्त्तिकी तरह अपने रागका भी श्रेष्ठ और सद्‌गुणी मनुष्य वचाव करता है। परन्तु जो मुमुक्षके मार्गमे प्रविष्ट होकर मेरा शिष्य होना चाहता हो—उसे अपने अत्यन्त

अनुरागकी वस्तुका त्याग करनेके लिये हँसते-हँसते तैयार रहना चाहिये। उसे स्वार्थ और ईर्ष्याका निकम्मापन अपने हृदयमेंसे खींचकर निकाल डालना चाहिये। इस प्रकार करने जा रहे हो और हृदयमें रक्तकी धार बह निकले और जगत् शून्य मालूम देनेपर भी वह सब कुछ उसे शान्त चित्तसे सहन करना चाहिये। श्रेष्ठ राजपुत्र! तेरे पिताका खजाना, इन्द्रिय सुख और जगत्की कीर्ति ये सब तुझे आकर्षित करके अपनी ओर खैंचनेकी सामर्थ्य नहीं रखते, और इससे उनका त्याग करनेमे तूने कोई महत्वका कार्य नहीं किया है। जब असली त्याग और आत्म-भोग देनेका प्रसंग आया तब तेरा धैर्य छूट गया। आत्म-भोगका दिव्य साफा तू न बाध सका। जो प्रेम प्रेमपात्रका ही सदैव कल्याण चाहता है, जो प्रेम अर्पण तो करता है परन्तु बदला लेनेकी आशा नहीं रखता, उस प्रेमको प्रसग पडनेपर तू नहीं दिखा सका है।"

चन्द्रसिंहने अपना मस्तक फिर झुका लिया, अब क्या करना चाहिये यह उसे बिलकुल न सूझा, तब उस ऋषिकी ओर दृष्टि डालकर इस प्रकार निवेदन करने लगा—

भगवन्! एक वार फिरसे आज्ञा कर दीजिये मुझे एक वार पुन. और शर्ममे डाल दीजिये, मेरे ज्ञानके चक्षुओंके आगे पर्दा पड गया है, अब जो अन्धकार आपकी दृष्टिके सामने दीख पडता है, इससे भी अधिक गहरे अन्धकारने मेरी दृष्टिको अन्धा बना दिया है। अत. मुझे पुनः कुछ सद्बोध दीजिये।

बुद्धदेव—"तीसरी वार भी तू प्रेमकी कसौटीमेसे निष्फल हो

गया, नन्दा नामकी तेरी स्त्रीने कुछ भारी अपराध कर दिया। उसकी युवावस्था अथवा उसकी अज्ञानताका लेशमात्र भी विचार किये विना ही, अथवा उसके ऊपर जरा-सी भी दया और उदारता दिखाये विना तुमने उसे महलसे वाहर निकलवा दिया।"

भगवन्। मैं उससे इसके अतिरिक्त और क्या वर्ताव कर सकता था? एक सदोप और चचल स्वभावकी स्त्रीको अपने वरावर रखना, और उसकी अपेक्षा अपना और अपने महलका मान सुरक्षित रखना क्या यह मेरा आवश्यक कर्तव्य न था? अपनी स्त्रीके किये हुए अयोग्य वर्तावको जो मैं छिपा लेता तो मेरी देशनीतिके नियमोंका भंग किया न कहलायगा? मेरी शुद्ध जीवन सम्वन्धी उच्च भावनाके विरुद्ध क्या वह क्षन्तव्य है?

वुद्धदेव--अच्छा राजपुत्र। क्या मुझे पुन. तुझे यही उपदेश देना चाहिये? श्रेष्ठ और सद्गुणी कहलानेवाला सासारिक मनुष्य अपने हक्कोंके सम्वन्धमे विचार करे, या अपनी मान कीर्ति वढ़ाये रखनेका प्रयत्न करे, वह अभिप्राय वाध सकता है, शिक्षा कर सकता है, और अयोग्य मनुष्यको अपनेसे अलग भी कर सकता है, परन्तु जो मेरा शिप्य वननेका अधिकार प्राप्त करना चाहता है, वह कदापि किसीका आशय सम्वन्धी अभिप्राय नहीं वाध सकता, वह प्रत्येक विपयके समझनेका प्रयत्न करता है, और क्षमा कर देता है, उस दोपके शोधनेका मन्थन नहीं कर सकता, उस दोपके अच्छे होनेकी ओर उसकी विशेप सतर्क दृष्टि रहती है, समुद्रके हृदयमे जितने जलविन्दु हैं, उसकी अपेक्षा दया और अनुकम्पाके विशुद्ध

और विशेष बिन्दु उसके हृदयमें मालूम पड़ते हैं; शुद्धता यह कुछ सद्गुण नहीं है, वह तो अशुद्ध मार्गका निवृत्ति रूप है। मेरा शिष्य ऐसी निवृत्ति यानी शुद्धताको विशेष महत्व नहीं देता। जीवनकी शुद्धताके साथ यदि प्रेम और दयाका मिश्रण न हुआ हो तो वही शुद्धता, अभिमान और कठोरताका कारण हो पडतो है, और एक मुमुक्षुके उन्नत मार्गमे बाधक हो जाती है, उस समय उसे शुद्धता न कहकर बल्कि शुद्धताकी छाया समझना चाहिये। पवित्र राजपुत्र! तुम अपने प्रवासके अन्दर सन्ध्या कालमे हिमालयके अनुपम पवित्र तथा ऊंचे शिखरोंकी ओर नजर डालते हुए आये हो, उन बर्फसे ढंके हुए शिखरोंपर प्रत्येक वस्तु ठंढी होकर निर्जीव भासती है, परन्तु एकदम वहा भिन्न-भिन्न प्रकारके चमकीले तथा भडकीले रग प्रगट हो जाते हैं, और चक्षु तथा हृदयको आनन्द पूर्वक लुभानेवाले प्रतीत होते है, इसीका नाम पवित्रता है और यही शुभतम शुद्धता है। प्रेम रहित पवित्रता मृत शरीरको ओढ़ाई हुई सफेद चद्दरसे अधिक विशेषता नहीं रखती। यदि उसके साथ प्रेम चमक उठे तो वही शुद्धताकी प्रणालिका द्वारा जीवनका प्रवाह चारों ओर सुन्दर ढगसे वहने लगता है।

चन्द्रसिंहकी आखोंमे आसू भर आये, उत्तरमे एक भी शब्द न बोल सका, और उसी जगह गिर पडा, फिर उसने दवी आवाजसे गला माजनेका प्रयत्न करते हुए यह कहा—

कृपालो! दीनबन्धो! मुझपर एक बार फिर विशेष कृपा करो, मुझे एक वार फिरसे प्रयत्न करने दें, योग्य अधिकारीके लिये

किन-किन गुणोंकी आवश्यकता है, वे कुछ अंशोंमें देव। आज मैं समझ पाया हूं। जहा तक मैं वापस न लौटू वहा तक अपनी दयाका सूर्य प्रकाश मुझपर प्रकाशित रक्खें, मेरी इतनी ही विनती-को स्वीकार करें।

"मैं स्वीकार करता हू" यह बुद्धदेवने कहकर बता दिया, और अपने पैरों तले पड़े हुए युवककी ओर ताककर देखा, उस समय उनकी दृष्टिसे इतना प्रेम प्रवाहित होकर प्रकाश स्फुरित हुआ कि अखिल कुँज एक ही क्षणमे जगमगा उठी। मानो प्रभात हो गया है, यह समझ कर रात्रिमे भी प्राणी, पक्षीगण सवेरेके जैसे मधुर गीत गाने लगे।

वह युवक वहासे उठ खडा हुआ और अपने रिसालेमे जा मिला, और साथमे लाये हुए हाथीपर बैठकर अपने नगरकी ओर विदा हो गया, और फिर उसी कुँजमे जामुनके नीचे बुद्धदेव अत्यन्त समाधि मग्न हो गये।

*　　*　　*　　*

चन्द्रसिंह अपने नगरके सन्मुख आ पहुंचा, उस समय उसका पिता अत्यधिक रोगी हो चला था, इसीसे राज्यकी लगाम उसे अपने सुकुमार हाथोंमे थामनी पड गई। अपने सिर माथे आकर पडी हुई जोखमदारी बड़ी ही अच्छी तरह अन्त.करण पूर्वक उसने निभानी शुरू की। दया और न्यायके लिये सब जगह प्रसिद्ध हो गया।

पहले तो उसने यक्ष और भल्लिकको अच्छे-अच्छे पुरस्कार

और अधिकार प्रदान किये, और पास-पासमे वने हुए दो भव्य महल उन दोनोंको दिये गये, उसने अपनी स्त्री नन्दाकी शोध कराकर पुनः राजगृहमें स्थापन कर दिया, जिससे लोगोंके दिल खट्टे पड गये। उसके पिताके समयके पुराने नौकरोंको बड़बड़ाने-का समय मिल गया, और लोक उसके विपयमे झूठी-झूठी अफवाहे उड़ाने लगे। एक बार जागृत होकर शंकायें बढने लगीं, और सारे शहरमे उसके कार्योंके लिये सहसा टीकायें होने लगीं, उसपर अत्याचारोंका अभियोग लगाये जाने लगा।

गुप्त आरोप उसपर लगानेपर भी चन्द्रसिंह जरा भी विचलित न हुआ। जिस प्रकार पहले गुलाबकी सुगन्ध ग्रहण की थी, उसी भाति अब काटोंसे लगनेवाले घरोंटोंको भी उसने सहन किया, इतना ही नहीं बल्कि सत्ताके लोभी उसके छोटे भाईने उसकी राजगद्दीको पचा डालनेके हेतु एक गुप्त मडल खडा कर दिया। पहले उसने मडल द्वारा सारे नगरमें यह बातावरण फैला दिया कि—चन्द्रसिंह निरकुश सत्ता जमाना चाहता है, उसकी सुधारक योज-नाये होनेपर भी देशको प्रहत कर डालेंगी। लोकोंको यह कहकर भ्रमणामे डाल दिया कि—इसमे एक भिक्षुका भी लगाव है, और वह पुराने रिवाजोंको जो कि वश परम्परासे चले आ रहे हैं उन्हे मिटाकर अपने देशमे नवीन धर्म फैलाना चाहता है। इस प्रकार लोकोको भडका कर लोकोंका मन उसके विरुद्ध कर दिया।

एक दिन चन्द्रसिंहको यह खवर मिली कि—उसको मारने तकके लिये षड्यन्त्र रचा गया है, परन्तु उसे जरा-सी भी चिन्ता

न हुई, तथापि उसके विश्वस्त मित्रोंने उसे चेतावनी दे दी, उसके भाई-बन्धु और विश्वस्त मित्र इस विषयमें सावधान हो गये, और उसके द्वारा जब हाथमे खंजर सहित खूनी, चन्द्रसिंहपर आक्रमण करनेकी तैयारीमे था ठीक उसी समय वह पकड लिया गया, और उस खूनीका नाम आर्द्रक था, और वह जातिका क्षत्रिय था, वह भयसे त्रास पाकर एकदम फीका पड़ गया और उसे तुरन्त चन्द्र-सिंहके सन्मुख लाया गया।

"मुझे मारनेका मन तुझे किस प्रकार हुआ" राजाने यह पूछा उसने उत्तरमे कहा कि—मैं तुझे देशके शत्रु और द्रोहीके रूपमे देखता हू, तू हमारे पुराने रीति रिवाजोंके विरुद्ध चलता है, और हमारी पुरानी धार्मिक क्रियाओंको रद्दी करना चाहता है। हमारे देशके सुख और वैभवके प्रतिकूल सुधार करना मागता है। इसी-लिये तुझे मारनेकी मेरी धारणा है।

चन्द्रसिंहने उसपर दयाकी दृष्टि डालकर मनमे यह विचारा कि यह खूनी एक निर्दोष पागलके समान है, उसने अपने सेवकोंसे कहा कि—"याद रहे कि मुझपर इसने प्राणघातक हमला भी किया तथापि इसका आशय शुद्ध ही था, सेवको! इस ओर आओ और इसकी बेडिया दूर कर दो।" उन सिपाहियोंको पहले आश्चर्य लगने पर भी तुरन्त राजाज्ञाका पालन किया गया।

इसके अनन्तर उसने आज्ञापूर्वक कहा कि—सेवको! "मुझे इस आर्द्रकके साथ कुछ क्षण इकला रहने दो" उसके मित्र और उसके सेवक अनिच्छासे पीछेकी ओर मुड़ मुडकर देखते-देखते

हौलसे बाहर हो गये। वे राजकुमारके इस साहससे घबराये हुए भी थे।

सभ्यताको मिटाकर आर्द्रक तिरस्कारकी दृष्टिसे चन्द्रसिंहकी ओर देख रहा था, उसके इस तिरस्कार अथवा अपमान भरे बर्ताव की ओर उपेक्षा करता हुआ चन्द्रसिंह उसके पास गया और ताक कर उसकी आखोंके सामने देखने लगा। उसकी आखोंमे तिरस्कार न था, एवं दया भी न थी, उसकी आखें गुप्त होकर आर्द्रकके भावोंको जानना चाहती थीं। बुद्धदेवने कहा था कि—"मेरा शिष्य दोपको शोधनेके स्थानपर दोषके लिये कुछ बचावका कारण हो तो वह उसे विशेप शोध करता है।" चन्द्रसिंह उसके पूर्व जन्मके कार्योंको ढूढ रहा था, सहसा उसे यह प्रतीत होने लगा कि मानो उसपर अद्भुत प्रभाव पड़ रहा है। जिसे वह एकान्तमे उसे अपने गुरुके रूपमें पहचानने लगा और उसका दिव्य आत्मा मानो उसमे प्रवेश करता हुआ भासने लगा, और वस्तुओंका छुपा रहस्य जानने लगा।"

उसने उस शूरवीर भूतकालको देखा, जिससे पूर्वकर्मो द्वारा वे दोनों एक दूसरेके साथ संकलके साथ बंधे हुए दीख पड़े, अज्ञानताके कारणसे होनेवाली अनेक भूल और स्खलनायें उसके दृष्टिगत पड़ने लगीं, अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली अलग-अलग इच्छायें और इच्छाओंका परिणाम स्वरूप उत्पन्न होनेवाला दुःखका सजीव चित्र उसकी आखोंके आगे खिंच आया, उसकी आखोंके आगेसे आर्द्रककी मूर्ति हट गई, और उसके स्थानतर अखिल मनुष्य जाति

उसमें जन्म पाती दीख पडी, मनुष्योंकी अज्ञानता और दुःख को देखकर उसे वडा खेद हो गया। उस खेदके साथ ही मानव वन्धुओंकी ओर दयाभावना उसकी हार्दिक भूमिमे खिल उठी, उस दुःखी जातिको अपने प्रेम पाशमे लेनेके लिये और उनका दु.ख अपनी दिलसोजीसे यथाशक्य कम करनेके लिये उसमे मानसिक इच्छा प्रवल हो उठी, अपनी शुद्धतासे उसे शुद्ध करनेके लिये, अपने प्रेमसे उसे नव्यजीवन अर्पण करनेके लिये और अपने आत्मभोगसे उस मनुष्य जातिको एक कदम अगाडी करनेके लिये उसके मनमे उत्कट इच्छा व्याप्त हो गई।

स्वप्नसे पुनः लौटनेकी तरह वह उस भव्य दृश्यसे वापस आ गया, उत्तरमे क्या कहना चाहिये यह उसे कुछ भी न सूझा, तथापि टूटे फूटे शब्दोंमे इस प्रकार वोला—

भाई! मैं तुझे अपने भाईके अतिरिक्त और किसी तरह नहीं देख रहा हू, तू मुझसे एक वार मिल भाई। और मैं जिस प्रकार तेरी अपकीर्तिमे भाग लेता हू, इसी तरह तू मेरी कीर्तिमे भाग लें।

लवे समय तक चलनेवाली शान्तिसे घवराये हुए सिपाही जव अन्दर आकर देखते है तव आर्द्रकको राजकुमारके कधेपर रोते हुए और चन्द्रसिहका मुख आनन्दसे भरपूर देखा।

* * * *

सूर्यके तेजसे प्रकाशित होकर जगमगा उठनेवाली कुंजमे वुद्धदेव समाधि मग्न थे, अपने प्यारे जामुनके वृक्षके नीचे वे पद्मासन जमा कर वंठे थे, उन्होंने सारी रात इसी तरह उनकी राह देखी थी,

क्योंकि उसे अपने बचनका पालन करने अवश्य आना है। प्रथम प्रातःकालकी लाल ऊषा दीख पडनेके अनन्तर प्रभात होने लगा। अन्तमें भूतलपर चारों ओर अपनी किरण फैलाते हुए सूर्य वृक्षोंकी टहनियोंमेंसे होकर प्रकाश करने लगा।

जामुनकी शाखाओंपर बैठकर बुद्धदेवके छोटे-छोटे पक्षी भक्तोंने प्रातःकालके मधुर और आनन्दप्रद गीत सुनाने आरम्भ कर दिये, हिरणी अपने बच्चोंके साथ वहा आ पहुंची, चीते और सिंहके बच्चे उनके पास खेलने लगे और प्यारमे आकर उनके पादारविन्द चाटने लगे। कारण उस कुँजमे बुद्धदेवके प्रेम-प्रवाहसे सब प्राणी अपना-अपना जन्म-जात और स्वाभाविक वैर भाव भुला बैठे थे।

इतनेमे कुछ खडखड़ाहट-सी हुई, शायद किसीके आनेके पैरों-की आवाज मालूम देने लगी। वही चन्द्रसिंह दूसरे क्षणमे वहा आकर खड़ा हो गया। इस वार वह अकेला ही आया था। उसके सैनिक अबकी बार उसके साथ न थे, और उसने एक भिक्षुकका रूप धारण कर रक्खा था। वह आते ही जमीनपर नम गया, और गौतम बुद्धको साष्टाग नमस्कार किया। मार्गके श्रमसे थक जानेके कारण जब वह महा कष्टसे उठा, तब आशीर्वाद देनेवालेने अपना हाथ उसके मस्तकपर फिराकर वड़ी ही ममता भरी वाणीमे कृपालु देवने यह कहा कि—

प्यारे चन्द्रसिंह! मेरे पवित्र शिष्य! इधर आ, अब तू अधिकारी बन गया है।

चन्द्रसिंह बुद्धदेवके चरण कमलके आगे बैठकर धर्मका रहस्य समझने लगा। उस समय अपूर्व शान्ति फैल रही थी। उस समय जो समय बंधा था सचमुच देखने योग्य था। उस समयका आनन्द अवर्ण्य था। क्या कभी हमारा भी ऐसा भाग्य उघड़ेगा, जिस दिन कि हम भी ऐसे महात्माके पास बैठकर सत्य तत्वको समझ कर ग्रहण करेंगे।

आदर्श-जीवन

तीन सौ वर्ष पहले भारतमें अंग्रेजोंका सर्वव्यापी राज्य न था। जहां तहां भीमकाय कालेजोंकी बिल्डिगें नहीं खड़ी थीं और विद्यार्थी उस समय कोट, पटलून, बूट, चश्मा चुरुटके अभ्यासी भी न थे। उन दिनों जैसे काशी व्याकरणके लिये समस्त भारतमे विद्याका केन्द्र था, उसी प्रकार बंगालका नदिया प्रान्त न्याय शास्त्रके लिये अध्ययनका केन्द्र था। विद्यारण्य शर्म्मा तो नदियाके भूषण थे। वृद्धावस्थाके कारण उनके सब बाल पक गये थे। परन्तु नेत्रोंकी ज्योति ज्यों की त्यों थी। बस्तीके बाहर पत्रोंकी बनी हुई उनकी कुटी थी। उसीके निकट छप्परके नीचे चटाइयोंका फर्श था। वहींपर बैठकर सौ सवा सौ विद्यार्थी उनसे न्यायकी शिक्षा पाते थे। ये विद्यार्थी न जूता पहिनते थे न टोपी। एक साधारण खद्दरकी धोतीका परिच्छद होता था। इनमे बंगाल, पजाब, गुजरात आदि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके विद्यार्थी थे। किसीसे फीस लेनेका नियम न था। प्रातःकालमें

नित्यकर्मसे निवट कर पण्डितजी विद्यार्थियोंके मध्यमे वैठते थे और दोपहर तक अगाध पाण्डित्यकी धारा विद्यार्थियोंमे वहाते थे। दोपहरके वाद विद्यार्थीगण वारी-वारीसे नगरमे जाकर कोई फल लाते थे, कोई आटा, दाल, चावल। पण्डितानी रसोई वनाती थीं, और सव विद्यार्थियों तथा पण्डितजीको भोजन कराकर वादमे स्वयं खाती थीं। यही उनका परिवार और ऐसा ही यह उनका जीवन था। एक दिन प्रात.काल पण्डितानीजी स्नान करने गगा तटपर गईं। वह स्नान करके ज्योंही घड़ेमे जल भरने चलीं उसी समय नदियाकी महारानी अपने सखियोंके साथ नहाने आईं। जव पण्डितानीजीने घडा भरनेके लिये जलको हाथसे हिलाया, तव एकाएक महारानी वेहोश होकर पानीमे डूवने लगीं। सखियें घवराकर उन्हे किनारेपर लाई और होशमे लानेके अनेक उपाय होने लगे। परन्तु महारानीको चेत न हुआ। पण्डितानीजी भी घडा भरकर एक ओर रखकर उनकी सहायताके लिये चलीं। उन्हे देखकर एक सखीने कहा कि—सव उपद्रव इसी अभागिनीका उठाया हुआ है। इसने इतने जोरसे जल हिलाया कि—महारानी मूर्च्छित हो गईं। दूसरीने कहा कि—इसके तनपर एक मैली-सी धोती है तिसपर भी इसको इतना गर्व है कि—महारानीको देखकर तनिक भी न डरीं। जो रेशमी वस्त्र होते तो न जाने पृथ्वीपर पर भी रखती या नहीं। पण्डितानीजीने उत्तर दिया—देवियो। मुझे व्यर्थमे क्यो दोप देती हो। मै तो वहुत दूर पानी भर रही थी। पर यह सत्य है कि मेरे तनपर मैली-सी खद्दरकी धोती अवश्य है और तुम्हारी रानीके

शरीरपर लाखों रुपयेके हीरे-मोतीके आभूषण हैं। बहुत बढ़िया रेशमी वस्त्र हैं। परन्तु तुम्हारी रानीके गहने यदि उतार दिये जायँ तो नदियाकी कुछ हानि न होगी। परन्तु जिस दिन मेरी यह मैली-सी खद्दरकी धोती उतर जायगी, उस दिन नदियामें अन्धकार मच जायगा। पण्डितानीजी सतेज स्वरसे यह कहकर चल दीं।

इतनी तीव्र बात सुनते ही रानीकी मूर्च्छा जाती रही और महलमे आकर कोप भवनमे पड़ रही।

राजाने आकर कारण पूछा। तब रानीने कहा कि—वह दरिद्र ब्राह्मणी मेरा अपमान कर गई है। उसे अवश्य दंड मिलना चाहिये। राजाने कहा कि—पण्डितानीजीने सत्य ही कहा है। मैं आज मर जाऊं तो मेरे स्थानपर कई अन्य राजा हो सकते हैं। परन्तु जिस दिन पण्डितजी न रहेगे उस दिन नदियामें अवश्य अन्धकार हो जायगा। ये पण्डितजी नदिया प्रान्तके सूर्य हैं। परन्तु रानी न मानीं, उसने कहा कि—किसी तरह उसे लालच देकर तथा वैभव दिखाकर वशीभूत करना चाहिये। उस दरिद्राको खद्दरसे इतना प्रेम।

राजाने कहा—प्रिये। शान्त हो, मैं ऐसा ही प्रयत्न करूंगा जिससे पण्डितानीजीका अभिमान दूर हो।

*   *   *   *

प्रातःकालका समय था, पंडितजी अपनी पर्णकुटीमे बैठे-बैठे न्याय पढ़ा रहे थे। विद्यार्थी नतमस्तकसे शान्ति-पूर्वक प्रवचन सुन रहे थे। एकाएक राजाने पहुंच कर प्रणाम किया। पण्डितजीने बैठे

ही बैठे उन्हें चटाईपर एक ओर बैठनेका संकेत किया। कुछ देर बाद विद्यार्थियोंसे निवृत्त होकर राजासे कुशल और आनेका कारण पूछा।

राजाने हाथ जोड़कर कहा कि—महाराज ! आप मेरे राज्यके भूषण और नदियाके सूर्य हैं। मैं आपको प्रणाम करने तथा यह पूछने आया हू कि मेरे योग्य कुछ सेवा बताकर कृतार्थ करें।

पण्डितजीने कहा कि—हम तो स्वयं ही अपनी सेवा कर लेते हैं। हमे तो किसी प्रकारकी सेवाकी आवश्यकता नहीं है। पर तुम यथावत प्रजा पालन करो।

राजाने कहा कि—किसी वस्तुका अभाव हो तो आज्ञा दीजिये। पण्डितजी बोले—न्यायकी टीकामे कुछ अभाव था, वह कल रातको हमने पूर्ण कर लिया है। अब कुछ अभाव नहीं है।

राजा बोला कि—मैं तो गृह सम्बन्धी सामग्रीका अभाव पूछता हू। पण्डितजीने कहा गृह सम्बन्धी बात मुझे मालूम नहीं। यह पण्डितानीजीसे भीतर जाकर पूछो। राजा अन्दर गया और पण्डितानीजीको दण्डवत् करके कहा कि माता। इस देशका राजा आपको प्रणाम करके यह प्रार्थना करता है कि किसी वस्तुकी आवश्यकता हो तो आज्ञा कीजियेगा।

पण्डितानीने कहा, दो तीन दिनसे मुझे एक धोतीकी आवश्यकता थी, अतः मैंने सूत कातकर जुलाहेको दे दिया था, जुलाहेने धोती बुनकर ला दी है। मैंने बदल ली है। अब मुझे किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। राजा हारकर लौट आया।

* * * *

शरीरपर लाखों रुपयेके हीरे-मोतीके आभूषण हैं। बहुत बढ़िया रेशमी वस्त्र हैं। परन्तु तुम्हारी रानीके गहने यदि उतार दिये जायँ तो नदियाकी कुछ हानि न होगी। परन्तु जिस दिन मेरी यह मैली-सी खद्दरकी धोती उतर जायगी, उस दिन नदियामें अन्धकार मच जायगा। पण्डितानीजी सतेज स्वरसे यह कहकर चल दीं।

इतनी तीव्र बात सुनते ही रानीकी मूर्च्छा जाती रही और महलमे आकर कोप भवनमें पड़ रही।

राजाने आकर कारण पूछा तब रानीने कहा कि—वह दरिद्र ब्राह्मणी मेरा अपमान कर गई है। उसे अवश्य दंड मिलना चाहिये। राजाने कहा कि—पण्डितानीजीने सत्य ही कहा है। मैं आज मर जाऊं तो मेरे स्थानपर कई अन्य राजा हो सकते हैं। परन्तु जिस दिन पण्डितजी न रहेगे उस दिन नदियामे अवश्य अन्धकार हो जायगा। ये पण्डितजी नदिया प्रान्तके सूर्य हैं। परन्तु रानी न मानीं, उसने कहा कि—किसी तरह उसे लालच देकर तथा वैभव दिखाकर वशीभूत करना चाहिये। उस दरिद्राको खद्दरसे इतना प्रेम।

राजाने कहा—प्रिये। शान्त हो, मैं ऐसा ही प्रयत्न करूंगा जिससे पण्डितानीजीका अभिमान दूर हो।

* * * *

प्रातःकालका समय था, पडितजी अपनी पर्णकुटीमे बैठे-बैठे न्याय पढ़ा रहे थे। विद्यार्थी नतमस्तकसे शान्ति-पूर्वक प्रवचन सुन रहे थे। एकाएक राजाने पहुंच कर प्रणाम किया। पण्डितजीने बैठे

ही बैठे उन्हें चटाईपर एक ओर बैठनेका संकेत किया। कुछ देर बाद विद्यार्थियोंसे निवृत्त होकर राजासे कुशल और आनेका कारण पूछा।

राजाने हाथ जोड़कर कहा कि—महाराज ! आप मेरे राज्यके भूषण और नदियाके सूर्य हैं। मैं आपको प्रणाम करने तथा यह पूछने आया हूं कि मेरे योग्य कुछ सेवा बताकर कृतार्थ करें।

पण्डितजीने कहा कि—हम तो स्वयं ही अपनी सेवा कर लेते हैं। हमे तो किसी प्रकारकी सेवाकी आवश्यकता नहीं है। पर तुम यथावत् प्रजा पालन करो।

राजाने कहा कि—किसी वस्तुका अभाव हो तो आज्ञा दीजिये। पण्डितजी बोले—न्यायकी टीकामें कुछ अभाव था, वह कल रातको हमने पूर्ण कर लिया है। अब कुछ अभाव नहीं है।

राजा बोला कि—मैं तो गृह सम्बन्धी सामग्रीका अभाव पूछता हूं। पण्डितजीने कहा गृह सम्बन्धी बात मुझे मालूम नहीं। यह पण्डितानीजीसे भीतर जाकर पूछो। राजा अन्दर गया और पण्डितानीजीको दण्डवत् करके कहा कि माता ! इस देशका राजा आपको प्रणाम करके यह प्रार्थना करता है कि किसी वस्तुकी आवश्यकता हो तो आज्ञा कीजियेगा।

पण्डितानीने कहा, दो तीन दिनसे मुझे एक धोतीकी आवश्यकता थी, अतः मैंने सूत कातकर जुलाहेको दे दिया था, जुलाहेने धोती बुनकर ला दी है। मैंने बदल ली है। अब मुझे किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। राजा हारकर लौट आया।

* * * *

कई मास व्यतीत होनेके पश्चात् पण्डितानीजीके लिये महलोंसे भोजनका निमंत्रण आया जिसे पण्डितानीने स्वीकार कर लिया। रानी प्रसन्न हुई। उसने समझा कि—इस बार उसे लालचमें अवश्य फँसाऊंगी, और अपना ऐश्वर्य दिखलाकर उसे लज्जित करूंगी।

पण्डितानीजीके लिये स्वर्ण खचित पालकी भेजी गई। राज-महलकी ड्योढ़ीपर महारानी स्वयं अगवानी करने आई, और बड़े आदरसे अन्दर ले गई। पण्डितानीजीको स्नान कराया गया। उसके बाद बहुमूल्य रत्न जडित आभूषण पहनाये। पण्डितानीजीने चुपचाप बिना आनाकानी किये सब पहन लिये। फिर चन्दनकी चौकीपर बिठलाकर अनेक प्रकारके भोजन और व्यंजन परोसे, दासिया पंखा करने लगीं। भोजन समाप्त हुआ। पण्डितानीजीने मुस्कुराकर रानीसे कहा कि तुम अब प्रसन्न तो हो। पण्डितानीजीसे रानीने कहा कि—आज हमारा अहोभाग्य जो इस तरह आप यहा पधारीं।

पण्डितानीजीने कहा कि—अच्छा अब तो मैं जाती हूं। मेरे सब बच्चे भूखे होंगे। यह कह कर उन्होंने एक एक करके सब वस्त्र अलंकार उतारने शुरू कर दिये। रानीने कहा हैं। हैं। यह आप क्या करती हैं? यह सब अलंकार तो आपके हो चुके! इन्हे पहने रहिये। पण्डितानीजीने हँसकर कहा बेटी। इनका मुझे क्या करना है। मेरे तनकी यह मैले खद्दरकी धोती सही सलामत रहे। मुझे और किसी वस्तुकी आकाक्षा नहीं, और फटी धोती पहनकर

पैदल ही अपनी कुटीकी ओर चल दीं। आज रानीने समझा है कि सफल जीवन वही है, जिसका आदर्श उच्च हो। उन्हे सम्मानके लालचसे इधर उधर नहीं किया जा सकता।

—सुमित्त भिक्खु

आदर्श-भिक्षु

सेवा जितना उच्च कोटिका धर्म है, उतना ही कठिन भी है। इसे पूरा पड़नेमे योगी जनोंको भी कभी-कभी आगा पीछा देखना पड़ता है। परन्तु जहातक इस जूयेके नीचे कंधा न आयगा वहां तक वह कुछ भी नहीं। यदि किसीको आदर्श पुरुष बनना है तो उसे सर्वप्रथम इस भक्ति योगमें ही लगना चाहिये। यदि ससारमे अमर कीर्ति छोड़ जानेकी अभिलापा है तो आजसे सेवकोंके रजिस्टरमे नाम लिखाये। तव संसार उसे फिर सबसे महान् सममझने लगेगा। यह निस्सन्देह है कि—सच्चे दिलसे की हुई सेवासे वह व्यक्ति इन्द्र द्वारा भी प्रशंसित होता है। आओ हम आज इसीका पाठ पढ़नेके लिये एक आदर्श भिक्षुका उत्तम चरित्र पढ़कर उसे विचारें।

* * * *

वह शहर था, इसके बाजार मनोहर और सुन्दर थे। बाजारू भीडमे चलते समय कधेसे कंधा छिलता था। उसमें धनाढ्योंकी वड़ी-

वडी कोठिया थी। व्यापारका वह केन्द्र समझा जाता था। नाम वाराणसी था। हजारों नागरिक सई सबेरे उपाश्रयमे आने लगते थे। नन्दीषेण भिक्षु उन्हें धर्मकी व्याख्या करके सुनाते थे। व्याख्यानके समय श्रोताओंमे कोलाहल न होता था। कारण उपाश्रय बस्तीसे बहुत दूर था, और सुननेवालोंमे सरोता—सोता न होकर मात्र श्रोताजन होकर ही वहा पहुचते थे। स्थान बस्तीसे बाहर होनेके कारण मुनिजन आरामसे निर्विघ्नतया स्वाध्याय-ध्यान और कायोत्सर्ग करते थे। ये नन्दीषेण मुनि श्रोताओंमे योगाभ्यासका उपदेश खूब ही करते थे। क्योंकि तपस्वीके अतिरिक्त ये असीम विद्वान भी थे। आप महीने-महीने तक तप किया करते थे, महीना पूरा होनेपर वस एक वार आहार लेने बस्तीमे आते। इनके सहनशीलता-सेवा आदि गुण सोनेमे सुगन्धका काम करते थे। ये सब मुनियोंकी सेवा अभेद रूपसे किया करते। जिससे सब नगर निवासी जनोंको उचित समयपर यह अनुकरणीय, पवित्र, पाठ मिला हुआ था। इसीसे वस्तीके मनुष्य-मात्रमे साम्यताका पोषक गुण समाया हुआ था। वे गरीब और छोटोंको अपने समान बनानेमे कभी नहीं चूकते थे। इसी कारण यहा किसीका कोई वैरी न था।

सब लोग सुबहसे शामतक तन तोड परिश्रम करके अपना जीवन निर्वाह चलाते थे। इसीलिये वहा पुलिश और कचहरीके कर्मचारी आनन्दमे वैठे रहते थे। कोई छठे छमास ही आरोपी आता था। यह सब मुनिके ज्ञान और तपोबलका माहात्म्य था, और वह प्रेम

मनुष्योंतक ही सीमित न रहकर धीरे-धीरे पशु संसार तकमे भी पहुंच चुका था।

*　　*　　*　　*

वैशाख ज्येष्ठकी गर्मी कितनी दुःसह्य होती है। लूसे तपकर वनके पशु जलाशयका पानी पीकर बड़की छायामें आ बैठे है। आनन्द और प्रेम इनका विश्राम है। जीव-जन्तुओंके सब ही प्रकार है। सिंह, चीता, शूअर, गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा आदि। वृक्षके ऊपर मोर, बाज, तोता, शिकरा आदि अनेक पक्षी भी पास-पास ही वैठे किलोल कर रहे है और ये कभी-कभी स्वाध्यायकी धुन सुनकर मस्त हो जाते है। आज यह सभा अपना आदर्श खडा कर चुकी है। क्योंकि इन सबका मन इस समय पवित्र है। पशु होकर भी पाशविक गुण भुलाये हुए है। किसीको किसीसे द्वेष नहीं है। जो बात मनुष्योंमे होनी चाहिये थी वही पशुओंमें पाई जाती है। सबने एक तालावसे पानी पीकर मानो छूत-छातका मसला उडा दिया है। पास-पास वैठकर भ्रातृभाव पैदा कर दिया है। वाह मुनिराज धन्य। तूने पशुओंमे भी प्रेम और अहिंसाका भाव भर दिया। वलिहारी तेरे आत्म-वलपर, कुर्बान जाऊं तेरे पवित्र तपस्तेजपर।

आज भारतको ऐसे ही मुनिओंकी आवश्यकता है, चाहे वह एक ही क्यो न हो, मगर सम्प्रदायोंकी ओटमे जनताको लडाकर मारनेवाले २००० मुनि भी निरर्थक है, भूमिके लिये भार रूप है।

औरोंको सुख चैन और छायाका आनन्द देनेवाला वृक्ष भी उन निरर्थकोंसे अच्छा है।

× × × ×

तीसरा पहर बीतने लगा है। आज मुनिके मासोपवासका पारणक दिन है। मुनिने अपना एक पात्र संभाला, प्रतिलेखन करके झोलीमें रख लिया। मुखवस्त्रिकाको खोल कर फिरसे मुखपर धारण किया, अपना एक वस्त्र भी ठीकसे पहन लिया। यत्न पूर्वक ३॥ हाथ पृथ्वी आगे चलते वक्त देख देखकर पदपद्धति रखते हैं। इस प्रकार पुरीमें प्रवेश करनेको ही थे कि—एक और मुनिने आकर उन्हे पीछेसे यह सूचना दी कि—तपस्विन। एक रोगी मुनि जगलमें अतिसारके रोगसे वेहोश पड़ा है। उसे आपकी सेवाकी वडी आवश्यकता हैं, और यदि अभी ही जाकर उसे ले आवें तो वड़ी कृपा होगी। यह सुनते ही नन्दीषेण अनगार वस्तीमे न जाकर उस जंगलकी ओर चले गये। जाकर देखा तो सचमुच उनको हैजा हो गया है।

उन्हें जरा-ज़रासी देरमे दस्त और वमन होता है। उनके शरीरकी दशा वड़ी ही दयनीय हो चली है। इस संयमीने उसको पीठपर चढा लिया और नगरकी ओर लाने लगे। वाजारके ऐन बीचमे रोगी मुनिको इतने दस्त और वमन हुए कि तपस्वीका समस्त शरीर गन्दगीसे भर गया। मगर धन्य सेवक मुनि तूने नाक तक न चढाया। वल्कि यह विचार आने लगा कि—मेरे चलनेके कारण इनके शरीरको भारी दमक पहुचती होगी, इसीसे

कष्ट बढ़ा जा रहा है। अभी वैद्यके यहां ले जाकर चिकित्सा कराऊंगा।

* * * *

नगर निवासियोंकी आखें चौंधिया गईं। यह चमक बिजलीसे भी अधिक थी। न रोगी है न मुनि है, न दस्त और बमनका कोई दाग है। वहा तो चन्दनकी सुगन्ध आती है। फूलोंकी-सी महक फैल गई है। एक देव मुस्कुरा रहा है और हाथ बाधे हुए है तथा सरे बाजार मुक्तकठसे प्रशसा कर रहा है और उच्च स्वरमें मुनिकी पुनः पुनः प्रशसा करता हुआ बता रहा है कि इस मुनिके सेवा धर्मकी प्रशसा स्वर्ग तक फैल गई है। इन्द्र स्वयं इनका गुण-गान करता हुआ नहीं थकता। मगर मुझे निश्चय न होनेके कारण परीक्षा लेने आया था। मैंने खूब ही कसौटी की और कसौटी करते-करते थक गया तब मुझे विश्वास हो गया कि—इनके मनमें सम्प्रदाय भेद नहीं है, सेवा-भाव है। इनकी अपूर्व सेवा-सहनशीलतासे आधुनिक मुनि-जगत कुछ पाठ सीखेगा।

—सुमित्त भिक्खु।

सेवा-बुद्धि

एक ही मनुष्य अनेक आश्चर्य-जनक कार्य कर सकता है। इसका पुष्ट प्रमाण यह है कि—हाथ और पेटके बीचमे जितनी गहरी सगाई है, उतना ही निकट सम्बन्ध ससारके प्रत्येक मनुष्यका सबसे गहरा सम्बन्ध है।

हाथ कमाता है, पेट उस कमाईका सग्रह कर छोडता है, और हौजरी द्वारा उसका लहू बनवाकर प्रत्येक अग तक उसे पहुचाता है।

हाथ पेटका सेवक है, पेट हाथका दासत्व करनेवाला है, इन दोनोंमें परस्पर कोई किसीका सेठ या अन्नदाता प्रभु नहीं है। दोनोंमे समान सेवा बुद्धि है, और यह सेवा बुद्धि दोनोंकी अपनी निजी वृद्धिके साथ-साथ औरोंके लाभके कामोंमे भी प्रेरक है।

दुनियामे न तो कोई सेठ है, न कोई मात्र पूज्य पदके अधिकार-का कमानेवाला ही है। बल्कि सच पूछो तो सबके सब एक प्रकारसे सेवक हैं, और एक ही सकलमे अलग-अलग कुंडे बनकर आपसमे जुडे हुए हैं, और सब अलग-अलग रहकर भी एक हैं।

राजा न्यायाधीश, पुलिस धर्मगुरु आदि सबके सब 'सेव्य' समझे जानेवाले सामान्यतः व्यक्ति वास्तवमे समाजके सेवक ही हैं। यदि सच पूछा जाय तो प्रजा-समूह जितनी उनकी सेवा करनेमे वधा हुआ है, उनकी अपेक्षा वे भी प्रजाकी अधिकाधिक सेवामे वधे हुए हैं।

जो अधिकारी, सेठ, और धर्मगुरु लोकोंके पाससे सेवा करानेका अपना हक मांगते हैं, अपनी पूजा करानेका अधिकार सर्वव्यापक वनाया चाहते हैं, वे 'समाज-शास्त्र' और आपलेके ईश्वरीय नियमसे अपरिचित वालकके समान हैं, और वे चाहे जितना पाश्चिमात्य ज्ञान या पूर्व-शास्त्रका ज्ञान रट चुके है। तथापि वे 'बाल-जीवन' है। क्योंकि समाज रूपी संकलके कुडे बनकर रहनेमें उनको 'आनन्द' माननेका खयाल भी नही आ सका है। पेट और हाथके वीचका स्वाभाविक सम्वन्ध जवतक वे नहीं समझ पाते तव तक उन्हे निरा अवोध ही कहना चाहिये। आह। बेचारे मूछें होनेपर भी निरे वालक ही है।

एक वार फिर कहूगा कि—यह वात सदैव हजारों वार समष्टि रूपसे स्मरण करानी चाहिये कि—ससारमे कोई किसीपर उपकार करता ही नहीं है, यद्यपि औरोंके मनको चाहे उपकार दीख पडता है परन्तु उस कामके करनेवाला तो अपनेको और अन्य मनुष्योंको एक सकलका सामान्य कुडा-सा ही समझ रहा है, और इसीमे उसे 'मैं' यह उपकार करता हू, ऐसा विचार तक भी नहीं आता।

क्या पेट 'स्वयं' को अन्न देनेके नाते हाथका उपकार मानता है ? तब क्या वह उसके पैरों पड़ता है ? तिक्खुतोका पाठ पढकर क्या उसकी वन्दना करता है ? और तब तक क्या हाथ अपने लिये मिलनेवाले रुधिरके द्वारा पोषण पानेके सम्बन्धमे पेटके गीत रचने बैठता है ?

यह राजा और किसान, जौहरी और झाडू देनेवाला, साधु और कैदी, विद्वान् और मूर्ख ये सब समान और उपयोगी मालाके मणकेके समान हैं। विश्वके सितारके एकसे आवश्यक तार है। उस जगत् रूप सितारमें एक तार भी निकम्मा नहीं है। एक भी तार दूसरे तारसे अधिक मूल्यवान् नहीं है। प्रत्येक तारको अमुक और विशेष स्वर-शब्द सौंपा गया है, और वह आवाज उस तारके अतिरिक्त किसी अन्य तारसे नहीं निकल सकती। प्रत्येक तारकी अलग-अलग आवाज एक स्वरका गायन उत्पन्न करता है। जो कि मनुष्यको क्षण भरके लिये दिव्य प्रदेशमे खींच लेनेकी शक्ति रखता है।

* * * *

ओ। 'अहपद' के कीचडमे फँसकर आनन्द माननेवाले मुछैले बालको। छोडो छोड़ो इस कीचड़के खेलको छोडो। चौदह राजु लोक (१४ ब्रह्माण्ड) तुममे समाये हुए है, और तुम ऐसे महापुरुष हो, उसे याद करो। तुम्हारी सकलके कुड़े यदि घिस गये होंगे तो तुम अवश्य टूट जाओगे, खोये जाओगे, वह जाओगे। हाथ टूटे हुए होंगे तो पेटको भूखा रहना होगा, और पेटकी अप्रसन्नता

(अजीर्णता) से हाथ पैर आदि सब अंग दुर्बल हो जायेंगे। इसी विचारको अपने मस्तकमें आने दो, और आप उपकार करनेवाले हैं या पूज्य हैं, अथवा अधिकारी हैं ऐसा दुराग्रह छोड़ दो, इसके स्थानपर सेवक बननेका पाठ सीखो। एक-दो के नहीं बल्कि सारे मानव समाजके तथा पशु ससारके तुम 'सेवक' हो, और जितनी सेवा कर सको थोड़ा है। तथा जितनी सेवा करोगे, वह आपके निजके लिये ही लाभदायक है। यह ठीक ही समझो इसमे कुछ भी सन्देह नहीं है।

जो 'उपकार' के लिय नही बल्के सेवा-बुद्धिसे, प्रेम-भावसे कुछ दान या उपदेश तथा किसी प्रकारका प्रकर्प-पारमार्थिक कार्य करता है। उसमे एक प्रकारसे विलक्षण बलका प्रवेश हो जाता है कि जिस बलसे वे असाधारण चमत्कार जैसे काम भी कर सकते है।

यदि तत्व दृष्टिसे देखा जाय तो प्रत्येक आत्मामे अनन्त वीर्य, अनन्त शक्ति है, मगर वह 'अह' के ढक्कनसे ढाप दी गई है, जिससे अब वह कैदमे है। अत. अब जो मनुष्य अपनी अनन्त शक्तिको उघाडनेके लिये 'अहपद' के ढक्कनको दूर कर सकता है, उसकी अनादिकालसे स्वय प्राप्त पर छिपी हुई शक्ति 'प्रगट' हो जाती है।

जितने अधिक प्रमाणमे मनुष्य निजको समाजरूप सितारका तार माननेकी भावनाको हृदयमे बनाये रखता है, जितने प्रमाणमें मनुष्य पेट और हाथके सम्बन्धको समझकर सेव्य' पदके स्थानमें 'सेवक' पदके लेनेमे ही आनन्द और मान समझ लेता है, जितने प्रमाणमे मनुष्य सबसे एकताका अनुभव रखता है, उतने ही प्रमाणमे

वह मनुष्य परमात्माके साथ एकताका अनुभव कर सकता है, और उतने ही प्रमाणमे आत्माकी परम शक्तियें उसके स्थूल देहमें भी व्यक्त हो जाती हैं, और पूरे-पूरे अंशमे प्रगट हो जाती हैं। तथा उसके हाथसे आश्चर्यमे डालनेवाले ऐसे बड़े-बड़े महाभारत कार्य अनायासमे ही सिद्ध हो जाते हैं।

* * * *

आज इस देशको और ख़ासकर जैन समाजको पूजा प्रतिष्ठा रखनेवाले सेठ और साधुओंकी जितनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कि समाज सेवकोंकी आवश्यकता है। जगत्‌की सेवाके लिये द्रव्य और शारीरिक परिश्रमकी आवश्यकता है, इसके लिये उसकी यह धारणा होनी चाहिये कि—मैं गृहस्थ अवस्थामें रहकर उन दोनों साधनों द्वारा सेवा करूंगा? ऐसे विचारके घरबारी-सेवक तथा आन्तरिक सकोच और प्रमादको त्यागकर विचारके सुन्दर वातावरणकी अत्यधिक अनुकूलता पैदा करता हुआ, जगत-की सेवाके मार्गको खोजकर, निष्कंचन आश्रमकी ओरके लोगोंका बहुमान लाभ लेकर इस पथपर लोगोंको अधिकसे अधिक विजय दिला सकू, इसीलिये मुझे 'त्याग' ही आदरणीय है इस विचारके सच्चे त्यागी, इन दोनोंको हम सचमुच उच्च श्रेणीके 'समाज-सेवक' कहेंगे। हमारे हाथ इनको अजलिके रूपमे चाहे प्रणाम और नमन न कर सकें परन्तु अपना हृदय सदैव इनके सामने झुकता ही रहेगा।

बदलते रहो !

लेखके ३-४ पृष्ठ लिखनेके पश्चात् जब पेंसिल घिस गई तब मैंने कलमतराशसे उसे पुनः तीक्ष्ण बनानेके लिये निश्चय किया और उसे कागजके ऊपरसे उठाकर कलमतराशके छिद्रको अर्पण कर दिया। एक मिनटके अनन्तर जब उसे बाहर निकाला और देखा तो क्रोधकी मारी लाल-पीली हो गई है। उसे कागजपर जब चलनेके लिये इशारा किया तो वह उसमें ही घुसकर रह गई, और जब जरा तेजी दिखलाई तो कागजमें छेद कर डाला। मैं भी तुरन्त ताड़ गया कि मूक और निर्जीव वस्तु भी जब हठपर आ जाती है तब वह भी इस प्रकार विरोध (Protest) किया करती है।

*　　　*　　　*　　　*

मैंने उसे नीचे छोड़ दिया और अपना हाथ पिछली ओरको खींच लिया। उसके मुँहसे क्रोध इस प्रकार बरस रहा था मानो ज्वालामुखीसे कोई अग्निज्वाला निकल रही है। यदि इस क्रोधका

कोई पौद्गलिक परिणाम होता तो कागज ही क्या मेरा पुस्तक, कलम, चौकी आदि सारा ही सामान नष्ट हो गया होता।

*   *   *   *

मैंने कहा आखिर इतना क्रोध क्यों ? इस अप्रसन्नताका कुछ कारण ? पेन्सिलने कहा कि—पहले आप यह बतायें कि—जो वर्ताव मुझसे करते हो वह अपने आपसे क्यों नहीं करते ? मैंने पूछा कौनसा वर्ताव ? उसने कहा, जब मैं घिस जाती हूं, आप मुझे तराशकर फिर कामके योग्य बना लेते हैं। अर्थात् आवश्यकतानुसार मेरी आकृतिको बदलते रहते हो। परन्तु आपकी निजी अवस्था यह है कि—सैकड़ों शताब्दियोंके पुराने विचारोंमें घिरे पड़े हैं। आवश्यकता आपको पुकार-पुकारकर विवश कर रही है कि अपनी धुनकी पुरानी आकृतिको बदलिये। परन्तु एक आप ही हैं कि इस कानसे सुनकर उस कानसे निकाल देते हो, मैंने बातें जो सुनीं तो पता लगा कि उसमें भार था, युक्ति थी, भविष्यका परिणाम था कुछ सोचने लगा था कि—पेंसिलने फिर कहा कि जब तक आप अपने उन पुराने विचारोंको काट छाटकर उनको नवीन रूप न दोगे तब तक मैं लिखनेकी नहीं। मैं हैरान, आश्चर्य, चकित हूं कि—ओह ! कुदरत ! मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त !

उत्तम लहू पीनेमे कमाल कर जाता था। यह ५०० भैंसे नित्य मौतके घाट उतार देता था। इसका मई सबेरे कोई नाम तक नहीं लेता था। इसका घर राजगृहसे दक्षिणकी ओर था। सौकरिक (सुलस) इसीका इकलौता लड़का था। आज इसका भाग्य-उदय हो गया है। अभी-अभी भगवान् ज्ञातृपुत्र वीर प्रभुकी वाणी रूपी अमृत पीकर आया है। इसकी ही आत्माने अन्दरसे ठीक आवाज पैदा की थी। सर्वज्ञकी आवाज़ इसकी आत्मामे स्वातीके मेघकी तरह मिलकर अमूल्य मोती पैदा कर गई। अब यह जातिसे भी कसाई नहीं रहा है। इसने प्रभुके पहले ही उपदेशसे श्रावकके १२ व्रत लिये हैं। भगवान्‌ने इसकी अमर-आत्माके साथ-साथ इसकी अपावन देहको भी शुद्ध कर दिया है। अबसे इसके देह सूत्रमे सबर रहने लगा है और पाप कर्म आनेका आस्रव जाता रहा है। आज यह 'समणोवासओ जाओ' श्रमणोपासक हो गया है, आदर्श जैन हो गया है, अनादिसे इसे यह कर्म रोग हो रहा था कि जिससे पर परिणतिमे ही इसका अभिरमण चला आ रहा था। पर जो आत्माके स्वाभाविक गुणपर पर्दा पड़ गया है, उस पर्देको हटानेके लिये जो सद्भाव (शुद्धोपयोग) प्रगट करता है, वही श्रमण कहलाता है। उसकी स्वीकृति सेवा या उपासनामे सुलस स्वयं सेवक श्रमणोपासक या स्वावलम्बी हो गया है। शरीर, कीर्ति, स्त्री, पुत्र, धन, अभ्युदय आदिकी उपासना इसकी दृष्टिमे गौण हो गई है। मुख्यतया मुनि (ज्ञान-दर्शन चरित्र) की सेवामे ही इसकी दृष्टि निष्ठा और भावना हो गई है।

'अभिगअजीवाजीवे' आत्माको सन्मुख रखकर जड़ और

चेतनके गुप्त भेदको भी ज्ञात कर चुका है। इसने जडसे पृथक् होनेकी ठान ली है। क्योंकि अब इसे दोनों वस्तुओंका वास्तविक परिचय मिल गया है। पर भगवान्‌ने इस अपावनको और भी पावन बनानेके लिये १२ वा अतिथि-सविभाग व्रत दे दिया है। जिसका आशय आत्मार्थी मुनियोंको आहार देना है। धन्य प्रभो ! तेरी उदारता सराहनीय है। जिसने अवन्द्यको वन्द्य और अस्पृश्य-को स्पृश्य बना दिया।

* * * *

चुनारकी पहाड़ियोंका पत्थर मँगवा कर इसने एक ऊंचे भवनका अभी ही निर्माण कराया है। इस प्रासादमे १०-१२ घर गृहस्थी आरामसे रह सकते हैं। महल बहुत बडा है जिसे गगनचुम्बी महल कहना चाहिये। इसकी मजिलें भी सातसे कम नहीं हैं चारो ओरके वातायनोंसे संसार भरकी हवा यहीं आ लगती है। छहों ऋतुओंके योग इसमे पाये जाते हैं। चौथी भूमिकापर सदैव वारवनिताएं नाचती गाती रहती हैं। यहींपर कालसूर २४ घण्टे शरावके नशेमे मस्त पडा रहता है। इसके सिंहद्वारपर एक लम्वा-चौडा चवूतरा है। इस जगह साझ होते ही तवलेपर थाप लगना आरम्भ हो जाता है। देश-देशान्तरोंकी वेश्याएं यहीं आकर एड़िया रगडती हैं, और इप्सित धन पाकर मालामाल वन जाती हैं

चवूतरेके सामनेसे एक लाल रंगकी नाली आती है, और उसके नीचेसे होकर सदर नालीमे जा गिरती है। मेघराज ही इसे वर्षा-कालमे धोकर कभी साफ करते हैं, अनुमानत वह नाली सामनेवाले

तबेलेसे आई है। तबेला १००-१२५ बीघेका लम्बा-चौडा है। कालसूर इसी कत्लखानेमे ५०० भैंसे रोज मारता है। इसके अतिरिक्त और भी पशु-पक्षियोंकी यहा प्राण-नदी बहा दी जाती है।

उनके मास, चमड़े, खून, हड्डी, आत, सींग, खुर, पाख, चोच आदिके व्यवसायसे बहुत-सा धन कमाता है। पटनेमे इसका बडा भारी रेशमका कारखाना भी खुला हुआ है। जहा करोड़ो रेशमी कीडोंको मारकर हजारो मन रेशम तैयार किया जाता है तथा देशान्तरोंमे भी रेशम रगनेवालोंने इससे खूनकी आढत बना रक्खी थी। यह उनकी मागके अनुसार हजारो पीपे खून रेशम रंगनेके लिये भेज दिया करता था।

* * * *

चबूतरेपर बैठा-बैठा सौकरिक मन ही मन सोच-विचारमे लगा हुआ है। भविष्यकी जीवन-सामग्रियोंको चुन-चुन कर एक ओर जमा करनेमे व्यस्त है। इतने ही मे जूतोंकी चुर मुरकी आहट सुनते ही उसकी विचार धारा वहीं रुक गई। उसने पीछेको ओर मुडकर देखा तो अपने पितारामको खड़ा देखा। उसने तुरन्त उठकर बापका शिष्टाचार किया। आज बापूके शब्दोमे बिजलीकी तरह भयकर कडक और मादकता थी। उसने गर्वभरे शब्दोंमे कहा कि—

बेटे सौकरिक। तबेले जल्दी जाओ। आज २००० पीपे खून बैल गाडियोंमे लदवाकर गाडीवानोंसे सख्ती लेकर कहो कि पटने जल्द जाय। रेशमके कारखानोंमे खूनकी कई दिनोंसे माग आई

थी। पर माल जरा आज दो दिनके विलम्बसे तैयार हो पाया है। कारण राजाकी आज्ञासे चौदस पन्दरसके दिन प्रति पक्ष यमघर वन्द रखना पडता है।

सौकरिक—पिताजी। क्षमा करें, अवसे आपकी इन आज्ञाओंका पालन करनेमे विवश हूं कारण इस नीच धधेको भगवान्‌के दरवारमे आज तिलाजली दे आया हू। मुझसे इन हत्यारे कामोंके करानेकी आशा न रखियेगा, और पिताजी। इस अधर्मको अव आप भी छोड दें। जिससे नर्कके घोर खड्डेमे पडनेसे वच रहोगे।

कालसूर—सत्यानाश। हाय। हाय। जुल्म। जुल्म। मालूम हो गया, आज तूने मेरे कुलमें कलक लगा दिया। जो तू मेरा पुत्र होकर आज उस ज्ञातृपुत्र महावीर प्रभुका भक्त (श्रावक) वन गया है। जैन क्या वना है, मेरे पेटपर लात मार दी है। आह। उनके मिशनने मुझे पहले ही मिट्टीमे मिला दिया है। उनसे मेरे व्यापारको भारी धक्का लगा है। इनको कैवल्य होनेसे पहले मेरा व्यापार खूव चमक रहा था। नौ निधि और वारा सिद्धिएं थीं। यज्ञवालोंने लाख लाख पशु मेरी मारफत एक दिनमे खरीदे थे। खास श्रेणिक राजाने एक दिन ६०००० वकरों और भेड़ोंका एक भारी झुड मुझसे ही मोल खरीद किया था। पर हाय। जवसे श्रेणिक जैन वना है मेरा सव कुछ गुड गोवर हो गया। इस महावीरके मिशनने मेरी आय मिट्टी कर दी है। अव तो रुपयेमे दमड़ी भी मुश्किलसे पल्ले पड़ती है। तू मुझसे अभव्यका पुत्र होकर भी उनके वहकाये वहक गया। हाय। तूने मेरा घर चौपट कर दिया। लाखो